जनवरी-मार्च 2017
ISSN : 2320-7736

सत्यमेव जयते

विज्ञान गरिमा सिंधु

स्वच्छ भारत
एक कदम स्वच्छता की ओर

अंक–100

Digital India

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
मानव संसाधन विकास मंत्रालय (उच्चतर शिक्षा विभाग) भारत सरकार
Commission for Scientific and Technical Terminology
Ministry of Human Resource Development
(Department of Higher Education)
Government of India

ISSN : 2320-7736 (Print)

विज्ञान गरिमा सिंधु

(त्रैमासिक विज्ञान पत्रिका)

अंक - 100
(जनवरी–मार्च 2017)

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
मानव संसाधन विकास मंत्रालय
(उच्चतर शिक्षा विभाग)
भारत सरकार

390 HRD / 2018—1

'विज्ञान गरिमा सिंधु' एक त्रैमासिक विज्ञान पत्रिका है। पत्रिका का उद्देश्य है– हिंदी माध्यम से विश्वविद्यालयी व अन्य छात्रों के लिए विज्ञान संबंधी उपयोगी एवं अद्यतन पाठ्य पुस्तकीय तथा संपूरक साहित्य की प्रस्तति। इसमें वैज्ञानिक लेख, शोध–लेख, तकनीकी निबंध, शब्द–संग्रह, शब्दावली–चर्चा, विज्ञान–कथाएं, विज्ञान–समाचार, पुस्तक–समीक्षा आदि का समावेश होता है।

लेखकों के लिए निर्देश

1. लेख की सामग्री मौलिक, अप्रकाशित तथा प्रामाणिक होनी चाहिए।
2. लेख का विषय मूलभूत विज्ञान, अनुप्रयुक्त विज्ञान और प्रौद्योगिकी से संबंधित होना चाहिए।
3. लेख सरल हो जिसे विद्यालय/ महाविद्यालय के छात्र आसानी से समझ सकें।
4. लेख लगभग 2000 शब्दों का हो। कृपया टाइप किया हुआ या कागज के एक ओर स्पष्ट हस्तलिखित लेख भेजें जिसके दोनों तरफ हाशिया भी छोड़ें।
5. प्रकाशन हेतु भेजे गए लेख के साथ उसका सार भी हिंदी में अवश्य भेजें। लेख के आयोग द्वारा निर्मित शब्दावली का ही प्रयोग करें तथा प्रयुक्त तकनीकी/वैज्ञानिक हिंदी शब्द का मूल अंग्रेजी प्रर्याय भी आवश्यकतानुसार कोष्ठक में दें।
6. श्वेत–श्याम या रंगीन फोटोग्राफ स्वीकार्य हैं।
7. लेख के प्रकाशन के संबंध में संपादक का निर्णय ही अंतिम होगा।
8. लेखों की स्वीकृति के संबंध में पत्र व्यवहार का कोई प्रावधान नहीं है। अस्वीकृत लेख वापस नहीं भेजे जाएंगे। अतः लेखक कृपया टिकट–लगा लिफाफा साथ न भेजें।
9. प्रकाशित लेखों के लिए प्रोत्साहन के तौर पर आयोग के नियमानुसार मानदेय दिया जायेगा। भुगतान लेख के प्रकाशन के बाद ही किया जाएगा।
10. कृपया लेख की दो प्रतियां निम्न पते पर भेजेः

    डॉ० अशोक एन. सेलवटकर
    संपादक, विज्ञान गरिमा सिंधु
    वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दवली आयोग
    पश्चिमी खंड – 7, रामकृष्णपुरम्
    नई दिल्ली – 110066
11. अपने लेख E-mail द्वारा तथा CD में भी (फॉन्ट के साथ) भेज सकते है।
12. समीक्षा हेतु कृपया पुस्तक/पत्रिका की दो प्रतियां भेजें।

पत्रिका का शुल्कः	भारतीय मुद्रा	विदेशी मद्रा	
सामान्य ग्राहकों/संस्थाओं के लिए प्रति अंक	रु. 14.00	पौंड 1.64	डॉलर 4.84
वार्षिक चंदा	रु. 50.00	पौंड 5.83	डॉलर 18.00
विद्यार्थियों के लिए प्रति अंत	रु. 8.00	पौंड 0.93	डॉलर 10.80
वार्षिक चंदा	रु. 30.00	पौंड 3.50	डॉलर 2.88

वेबसाइटः **www.cstt.nic.in**
कापीराइट © 2017
प्रकाशकः
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
मानव संसाधन विकास मंत्रालय
भारत सरकार, पश्चिमी खंड–7
रामकृष्णपुरम्, नई दिल्ली – 110066

बिक्री हेतु पत्र–व्यवहार का पताः
वैज्ञानिक अधिकारी, बिक्री एकक
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली
आयोग, पश्चिमी खंड–7,
रामकष्णपुरम्, सेक्टर–1,
नई दिल्ली– 110066
दूरभाष– (011) 26105211
फैक्स – (011) 26102882

बिक्री स्थानः
प्रकाशन नियंत्रक, प्रकाशन विभाग
भारत सरकार,
सिविल लाइन्स, दिल्ली–110054
E-mail: vgs.cstt@gmail.com

अध्यक्ष की ओर से....

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग द्वारा प्रकाशित "विज्ञान गरिमा सिंधु" का शताब्दी अंक (100वां अंक) पाठकों, लेखकों और जन–सामान्य के समक्ष प्रस्तुत करते हुए मुझे अपार हर्ष हो रहा है। "विज्ञान गरिमा सिंधु", 1986 से लगातार प्रकाशित होती आ रही है। कई बार प्रकाशन में देरी हुई तो कई बार मुद्रण में, पर इसका प्रकाशन बंद नहीं हुआ।

इस अंक में कंप्यूटर विज्ञान, न्याय आयुर्विज्ञान, कृषि, आयुर्वेद और स्वास्थ्य विज्ञान पर विविध लेख प्रस्तुत है। साइबर अपराध पर 'इंटरनेट हैकिंग का आधुनिक रूप' नामक लेख में पाठकों के लिए महत्वपूर्ण और रोचक जानकारी प्रस्तुत की है। इसी प्रकार न्याय आयुर्विज्ञान में पॉलीग्राफ परीक्षण और न्यायिक मान्यता पर विधिक लेख भी अच्छा है, भारत में प्रथम किडनी प्रतिरोपण सर्जन प्रो. केदारनाथ उडुप्पा के जीवन पर एक लेख भी इस अंक में शामिल है। रसोई के संबंध में हींग के महत्व को इंगित करता हुआ एक लेख खानपान में रुची रखने वालों के लिए प्रस्तुत है। विज्ञान समाचार विविध जानकारी से पूर्ण है तथा हमें नए–नए वैज्ञानिक आयामों से परिचित कराता है। इसी प्रकार आज के जीवन में स्वैच्छिक रक्तदान अतिशय महत्वपूर्ण एवं महादान कैसे है। इस संबंध में लेखक ने हमें रक्तदान के महत्व को सरल भाषा में बताया है इन वर्षों में पत्रिका एकक में संपादक व उनके सहयोगी कर्मियों ने अपने अनवरत प्रयास से इसको एक स्तरीय पत्रिका बनाने में सहयोग दिया है तथा परोक्ष रूप में हिंदी में विज्ञान लेखन को बढ़ावा देने में योगदान दिया है। इस पत्रिका के प्रकाशन से आशा ही नहीं, पूर्ण विश्वास भी है कि भविष्य में भी यह पत्रिका नए कलेवर और विविध वैज्ञानिक साहित्य सामग्री के साथ प्रकाशित होती रहेगी। अंक से संबंधित सभी लेखकों के प्रति आयोग आभारी है। पत्रिका के संपादक डॉ. अशोक एन. सेलवटकर अनेक तकनीकी कठिनाइयों एवं आयोग के प्रशासनिक कार्यों का दायित्व निर्वहन करने के बावजूद पत्रिका को उत्कृष्ट बनाने में सतत प्रयत्नशील हैं जिसके लिए वे धन्यवाद के पात्र हैं।

आयोग के अध्यक्ष के नाते मैं यह उम्मीद करता हूँ कि यह पत्रिका सुधी पाठकों तथा देश के विभिन्न शैक्षणिक संस्थानों में पहुंचकर आयोग के क्रियाकलापों का प्रचार–प्रसार कराने में सहायक सिद्ध होगी और इसी के साथ नव लेखकों को हिंदी भाषा में विज्ञान लेखन के लिए प्रोत्साहित करेगी।

(प्रोफेसर अवनीश कुमार)
अध्यक्ष
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग

संपादकीय

विज्ञान गरिमा सिंधु का 100वाँ अंक पाठकों को समर्पित करते हुए अपार हर्ष हो रहा है। वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग की स्थापना 1961 में इस उद्देश्य से हुई कि भारतीय भाषाएं उच्च शिक्षा का माध्यम हो। इस उद्देश्य प्राप्ति के लिए आयोग ने विभिन्ने विषयों की विविध भाषाओं में लाखों की संख्या में शब्दावली तैयार की और आज भी अनवरत गति से विज्ञान के सृजन के साथ नए शब्दों की भारतीय भाषाओं में शब्दावली तैयार की जा रही है। वर्ष 1986 में तत्कालीन आयोग अध्यक्ष और अन्य विद्वानों ने यह सुझाव दिया कि शब्दावली और परिभाषा कोशों के अलावा आयोगे की ओर से विज्ञान लेखने को बढ़ावा देने कि लिए किसी पत्रिका या तत्सम् साहित्य का प्रकाशन हो। इसी क्रम में विज्ञान गरिमा सिंधु का प्रकाशन प्रारंभ हुआ। पहले वर्ष में यह एक बार प्रकाशित हुई। दूसरे वर्ष से इस पत्रिका ने त्रैमासिक का आकार लिया और तब से लेकर अब तक अनवरत यह पत्रिका प्रकाशित होती रही है। उस समय आयुर्विज्ञान, इंजीनियरी, आदि विषयों को लेकर भी अलग–अलग पत्रिकाओं का प्रकाशन आयोग की ओर से प्रारंभ हुआ था परंतु 21वीं सदी तक सफल प्रकाशन में विज्ञान गरिमा सिंधु का अपना एक अलग महत्व है।

प्रस्तुत 100वें अंक में 13 लेख पाठकों, वैज्ञानिक और शिक्षक वर्ग के लिए प्रस्तुत है। साइबर अपराध पर एक अनुपम प्रस्तुति पहले लेख में देखने को मिलेगी। जबकि आयुर्वेद और स्वास्थ्य पर भी प्रकाश डालने का प्रयत्न किया गया है। समुद्र के प्राकृतिक तटों की रक्षा में मैंग्रोव वनों का क्या महत्व है यह इस लेख के लेखक ने बड़े ही सरल भाषा में हमें बताया है। वैदिक काल मे मृदा विज्ञान किस हद तक प्रगति पर था और उसकी आधुनिक विज्ञान के साथ जब तुलना करते हैं तब इसके महत्व को अधोरेखांकित कैसे किया जाए इस पर भी एक लेखक हैं। इसके अलावा विज्ञान समाचार में विविध वैज्ञानिक जानकारी लेखक ने बड़े करीने से प्रस्तुत की है। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि आयोग का 100वां अंक शुरुआत से लेकर अब तक की पत्रिकाओं का सार कहा जा सकता है।

आयोग की ओर से 100वें पत्रिका का संपादन करने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ है। आयोग के लिए यह एक अकादमिक उत्सव की तरह है। शीघ्र ही आयोग अपनी शब्दावली और परिभाषा कोशों के साथ में इस पत्रिका को भी एक नए, अनूठे अंदाज में प्रस्तुत करेगी और डिजीटल इंडिया के परिप्रेक्ष्य में इसे आयोग की गतिमान वेबसाइट पर सभी के लिए निःशुल्क उपलब्ध कराएगा। इस कार्य में पत्रिका एकक एवं आयोग के अधिकारी/कर्मचारियों का प्रत्यक्ष या परोक्ष सहयोग मिला है जिसके लिए मैं उनका आभारी हूँ। विशेष रूप से आयोग के अध्यक्ष का भी आभारी हूँ जिन्होंने मुझे इस कार्य के योग्य समझा व समय–समय पर मार्गदर्शन प्रदान किया। उन सभी लेखकों का भी मैं आभारी हूँ जिन्होंने अपने लेख भेजकर पत्रिका के प्रकाशन को सफल बनाया है। सभी पाठकों से अनुरोध है कि पत्रिका में प्रकाशित लेखों से संबंधित अपने विचारों से हमें अवगत करायें तथा पत्रिका के कलेवर को और उत्कृष्ट बनाने के लिए अपने सुझावों से अवगत करायें।

(डॉ. अशोक सेलवटकर)
संपादक

विज्ञान गरिमा सिंधु

हिंदी में वैज्ञानिक एवं तकनीकी लेखन की स्तरीय त्रैमासिकी

अंक 100, जनवरी–मार्च 2017 (ISSN : 2320-7736)

प्रधान संपादक
प्रोफेसर अवनीश कुमार
अध्यक्ष

संपादक
डॉ. अशोक सेलवटकर

सहायक संपादक
श्री शैलेंद्र सिंह
सह. वैज्ञानिक अधिकारी

प्रकाशन–मुद्रण व्यवस्था
शिव कुमार चौधरी
सहायक निदेशक

बिक्री एवं वितरण
डॉ. भीमसेन बेहरा
वरिष्ठ वैज्ञानिक अधिकारी
(आर्युविज्ञान)

संपर्क सूत्र
संपादक

'विज्ञान गरिमा सिंधु'
वैज्ञानिक तथा तकनीकी
शब्दावली आयोग
पश्चिमी खंड-7
आर. के. पुरम,
नई दिल्ली-110066

अनुक्रम

			पृ. सं.
1.	साइबर अपराध : इंटरनेट हैकिंग का आधुनिक रूप	आशीष प्रसाद	1
2.	पॉलिग्राफ परीक्षण ओर न्यायिक मान्यता	सतीश चंद्र सक्सेना	7
3.	नवीन वैज्ञानिक उपलब्धियाँ	डॉ. प्रेम चंद्र श्रीवास्तव	10
4.	अवरक्त स्पेक्ट्रमिकी	डॉ. अजय कुमार चतुर्वेदी	16
5.	अंडों की गुणवत्ता एवं रखराव की विधियाँ	आनंद लक्ष्मी एन एवं रामकृष्ण महापात्रा	21
6.	वैदिक काल में मृदा विज्ञान की रूपरेखा और इसका आधुनिक परिप्रेक्ष्य में महत्व	डॉ. वेंकटेश भारद्वाज	26
7.	आलू पर फाइटोफ्थोरा इन्फैस्टैन्स के नियंत्रण में जैवकारकों की भूमिका	झिलमिल गुप्ता	30
8.	आयुर्वेद और आपका स्वास्थ्य	दिनेश चंद्र बहुखंडी	35
9.	प्रो. केदारनाथ उडुप्पा : भारत में प्रथम किड़नी प्रतिरोपण सर्जन	डॉ. दिलीप कुमार मौर्य	40
10.	प्राकृतिक तट रक्षक : मैंग्रोव वन	डॉ. दीपक कोहली	44
11.	विज्ञान समाचार	डॉ. दीपक कोहली	48
12.	स्वैच्छिक रक्तदान महादान	कैलाश नाथ गुप्त	52
13.	हींग रसोई की शान	डॉ. नवीन कुमार बौहरा	55
☐	परिचय लेखक		59
☐	आयोग के प्रकाशन		60
	ग्राहक फार्म		72
☐	बिक्री संबंधी नियम		74
☐	प्रकाशन विभाग, भारत सरकार के बिक्री केंद्रो की सूची		75

1

साइबर अपराध : इंटरनेट हैकिंग का एक आधुनिकतम रूप

आशीष प्रसाद

साइबर अपराध का स्वरूप तथा विस्तार प्रायः किसी सामाजिक सांस्कृतिक एवं प्रौद्योगिकी के परिवेश को प्रतिबिबित करता है। इंटरनेट 'विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की श्रेष्ठतम सौगातों में से एक है लेकिन विडंबना यही है, कि जैसे–जैसे इंटरनेट हमारे जीवन को सुगम और गतिशील बना रहा है, वैसे–वैसे इससे जुड़े खतरों की आशंका भी बढ़ती जा रही है, जब कभी परिवेश में परिवर्तन आता है, साइबर अपराध की अंतर्वस्तु एवं स्वरूप में भी परिवर्तन परिलक्षित होता है। विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के विकास से समाज की सामाजिक – सांस्कृतिक संरचना में अनेक नवीन परिवर्तनों का जन्म होता हैं। आधुनिक समाज मूल रूप से इस अद्यतन अपराधिक उपसंस्कृति के मध्य, संक्रमण से गुजर रहा है, परिणामतः आतंक, हिंसा, भ्रष्टाचार एवं अपराधी व्यवहार सामान्य जनजीवन का अंग बनते जा रहे हैं। इस प्रकार स्पष्ट रूप से परिलक्षित है कि अपराध, सामाजिक–सांस्कृतिक समूह का दर्पण है। जीवन को सुलभ और सुविधाजनक बनाने वाला श्रेष्ठतम इंटरनेट, सुरक्षा की दृष्टि से एक चुनौती बन गया है।

इसका अनुमान अस्सी के दशक में जन्मे इंटरनेट के संबंध में लगा पाना संभव नहीं था, लेकिन भारत में नब्बे के दशक के उत्तरार्द्ध में शुरू हुई 'सूचना क्रांति जो किसी बड़े वरदान से कम साबित नहीं हुई। भारत में इंटरनेट क्रांति की बढ़ती उपयोगिता तथा लोकप्रियता का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि दुनिया में इंटरनेट का उपयोग करने वाले देशों में चौथे स्थान पर है। सन् 1969 में अमेरिकी रक्षा अनुसंधान विभाग ने कंप्यूटरों के सर्वाधिक किफायती प्रयोग के लिए इंटरनेट का आविष्कार किया था। अमेरिकी रक्षा मंत्रालय द्वारा संचार प्रणाली की निरंतरता को बनाए रखने के लिए एक अनियमित प्रकार की संचार प्रणाली की खोज करने के उद्देश्य से पहली बार इंटरनेट का अविष्कार हुआ था। 1990 के दशक की शुरूआत में वर्ल्ड वाइड वेब डब्ल्यू डब्ल्यूडब्ल्यू (www) का विकास हुआ जो पाँच क्षेत्रीय सुपर कप्यूंटिंग कोड़ों को मिलाकर बनाया गया था। सन् 1994 तक वर्ल्ड वाइड वेब, सामान्य जन और अपनी उपलब्धि और उपयोगिता दर्ज कर चुकी थी। इसके मल्टीमीडिया और हाइपरटेक्स्ट से सबंन्धित पहले यूरोप की संचार बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा विकसित ओएसआई प्रोटोकॉल स्टैक से बेहतर साबित हुए और जल्द ही यह निश्चित हो गया कि इंटरनेट अगली शताब्दी में वैश्विक एकीकरण की सबसे प्रभावी प्रौद्योगिकी सिद्ध होगी, वर्तमान में जितने भी नेटवर्क संसार में बनाए जाते है, सभी इंटरनेट में सम्मिलित हो जाते हैं और उसका क्षेत्र उत्तरोतर बढ़ता जाता है, और इस तरह कई नेटवर्क सोसाइटी जन्म लेती है।

नेटवर्क सोसाइटी को ही सूचना समाज के नाम से जाना जाता है कंप्यूटरो के परस्पर संपर्क से बना जालक्रम (नेटवर्क) कहलाता है। नेटवर्को के बीच विचरण करने वाले इंटरनेट के प्रयोक्ता नेटिजंस (Netizen) कहलाते हैं और नेटिजंस को "सूचना समाज" के नाम से जाना जाता है। आज नगरीय तथा भारत में इंटरनेट का प्रयोग करने वालों की संख्या तीव्र गति से बढ़ रही है तथा कंप्यूटीकरण, नेटवर्किंग और बहुराष्ट्रीय टेलीविजन नेटवर्क पर नई दृश्यावली का बोलबाला दिखाई देने लगा है। यद्यपि, सीमाओं की अस्पष्टता के कारण किसी साइबर समुदाय को किसी खास सामाजिक, सांस्कृतिक समुदाय के समकक्ष नहीं माना जा सकता।

समस्त सरकारी और गैर–सरकार जालक्रमों ने मिलकर भारत में अनेक इंटरनेट प्रयोग करने वालों को एक सूत में बाँध दिया है इस प्रकार देखा जाए तो पश्चिमी देशों की तुलना में भारत में इंटरनेट प्रयोग करने वालों की संख्या बहुत कम है परंतु तृतीय विश्व के किसी भी देश की तुलना में भारत में साइबर जगत में भ्रमण करने वालों की संख्या बहुत अधिक है। इस प्रकार हम देखते हैं कि साइबर अपराध, आपराधिक व्यवहार का एक बृहत एवं द्वितीय स्वरूप है जो आधुनिक नेटवर्क समाज या सूचना समाज में कंप्यूटर, इंटरनेट और संचार के अन्य आधुनिकतम साधनों के तीव्र विस्तार के फलस्वरूप जन्मा है।

क्या है साइबर आतंकवाद?

साइबर आतंकवाद में कंप्यूटर तंत्र के द्वारा दुश्मन, देश की साइबर तंत्रों को ठप कर देते हैं, जिससे उस देश के कंप्यूटर कार्य करना बंद कर देते हैं या गलत सूचना दर्शाने लगते हैं। इन सबका प्रयोग आतंकवादी अपने लाभ के लिए करते है। ऐसे आतंकवादी प्रायः हैकर के नाम से जाने जाते हैं। यदि साइबर आतंकवाद को परंपरागत आतंकवाद के समान माना जाता है तो इसमें केवल वे हमले शामिल होंगे जो संपति या जान के लिए खतरा बन सकते हैं, हैकर्स अपने देश की सीमाओं के अंदर से ही ऐसी गतिविधियों को अंजाम दे सकते हैं और उन पर कानूनी कार्यवाही करना भी कठिन हो जाता है।

साइबर अपराध उन अपराधिक प्रवृत्ति के लोगों की देन है। जो निजी स्वार्थों के लिए इंटरनेट

का गलत इस्तेमाल करते है। इंटरनेट के संजाल से विश्व का कोई भी कोना अछूता नहीं है इसलिए सुरक्षा की दृष्टि से इसका प्रबंधन अपने आप में एक चुनौती है। प्रमुख अंतरराष्ट्रीय संगठन "द आर्गेनाइजेशन फॉर अकानॉमिक कोऑपरेशन एंड डेवलपमेंट (DECD)" के अनुसार बिना पूर्व अनुमति के संसाधन और संचरण से संबधित कोई भी गैर–कानूनी, अनैतिक व अनाधिकृत कृत्य, साइबर आतंकवाद की श्रेणी में आता है।

प्रौद्योगिकी के इस युग में जहाँ एक ओर देशों की सुरक्षा, नित्य नई तकनीकों पर निर्भर होती जा रही है। वहीं दूसरी ओर साइबर आतंकवादियों के द्वारा इस तकनीकी में सेंध लगाने के नए–नए तरीके विकसित किए जा रहे हैं। साइबर तकनीक के द्वारा आतंकवादी दुशमन, देश की सुरक्षा व्यवस्था को कमजोर करते हैं जो कि साइबर आतंकवाद के अंतर्गत आती है। आतंकवादियों ने अपनी कट्टरपंथी विचारधारा के प्रसार में इंटरनेट को हथियार बना लिया है। आतंकवादी गुप्त संदेशों के आदान–प्रदान के नए–नए तरीके निकालकर सुरक्षा एजेंसियों के समक्ष लगातार चुनौतियाँ प्रस्तुत कर 'रहे हैं। शाब्दिक संदेशों के बजाय आतंकवादी संगठन, आपसी संप्रेषण के दौरान (कोडेड) और इनक्रिप्टेड संदेशों का प्रयोग कर रहे हैं।

साइबर अपराध के विभिन्न रूप एवं कारण

साइबर अपराध के अंतर्गत निम्नांकित स्वरूप परिलक्षित होते है–

साइबर पोर्न (cyber porn)– यह सभी जानते हैं कि तकनीकी उन्नति का आरंभिक उपयोग कामुक उद्देश्यों के लिए किया गया है यह बात दृश्य प्रौद्योगिकी, कम्प्यूटर मल्टीमीडिया होलोग्राफी इत्यादि के संदर्भ में सत्य पाई गई है। कम्प्यूटर पोर्नोग्राफी एक विस्तृत व पूर्ण सुस्थापित व्यापार क्षेत्र है। वर्तमान परिवेश में पाश्चात्य देशों में कम्प्यूटर का प्रयोग अधिक से अधिक महिलाओं द्वारा किया जाने लगा है इसलिए वहाँ पर महिला–प्रधान पोर्नोग्राफी भी अप्रचलित नहीं है। साइबर पोर्नग्राफी में प्रिंट मीडिया के चित्रों व अचल प्रतिरूपों को इलेक्ट्रॉनिक पुस्तकों के रूप में परिवर्तित कर दिया जाता है। इस प्रकार से फैली हुई प्रसिद्ध पोर्नोग्राफी पत्रिकाएँ जैसे – 'प्लेबाय, पेन्टहाउस इत्यादि ग्रंथ के रूप में परिवर्तित हो जाती है, जिनको कम्प्यूटर स्क्रीन (पर्दे) पर देखा जा सकता है। एनिमेशन्स व फिल्मों को भी कम्प्यूटर पर प्रदर्शित किया जा सकता है।

पोर्नोग्राफिक कम्प्यूटर खेल, पोर्नोग्राफिक दृश्यों को जीतने के लिए दिखाए जाते हैं।

हैकिंग (Hacking)– विस्तार की दृष्टि से यह एक महत्वपूर्ण साइबर अपराध का रूप है। सामयिक तकनीक में हैकर को एक ऐसे व्यक्ति के रूप में परिभाषित किया जा सकता है तो कम्प्यूटर से पीड़ित है। एक हैकर कम्प्यूटर नेटवर्क में अवैध प्रवेश पा लेता है या वह प्रतिलिप्याधिकार के कोडों को अपनी चालाकी से तोड़ देता है। फिर भी, हम स्पष्टता के लिए पुरानी पारिभाषिक शब्दावली को स्थापित करेंगे। हैकर्स कम्प्यूटर से पीड़ित व्यवसायी है जो गहन स्वच्छंद या रूढियुक्त ज्ञान का प्रयोग, बहुधा अवैध लाभ प्राप्त करने के लिए दूसरे व्यक्ति या संगठन के कम्प्यूटर तंत्र में प्रवेश करता है।

क्रैकिंग (Cracking)– क्रैकिंग और हैकिंग एक–दूसरे से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित हैं तथा क्रैकर्स और हैकिंग में भेद अस्पष्ट है। एक व्यक्ति जो साइबर अपराध में किसी प्रकार लिप्त है वह दूसरे में भी लिप्त हो सकता है। क्रैकर्स, व्यावसायिक सॉफ्टवेयर में उनके कोड को बदलकर सेंध लगाते हैं। इस प्रकार कॉपीराइट क्रोचिंग, क्रैकिंग का मुख्य स्वरूप है। कुछ व्यवसायिक प्रोग्रामों में विशेषकर पुराने प्रोग्रोमों की अवैध प्रतिलिपि बनाए जाने के भय से उन्हें सुरक्षित बनाए रखने के लिए न तोड़े जा सकने वाले कोड का प्रयोग किया जाता है लेकिन बहुत–से प्रयोगकर्ता (क्रैकर्स) इस कोड को तोड़ने में सक्षम होते हैं और स्वतंत्रतापूर्वक इन प्रोग्रामों की प्रतिलिपि बना लेते हैं इस प्रकार क्रैकिंग में निम्नलखित क्रियाकलाप आते है–

- प्रतिलिप्याधिकार प्रतिबंध कोड को तोड़कर किसी प्रोग्राम में मामूली परिवर्तन करना।

- बहुत से प्रोग्रामों को प्रयोक्ता द्वारा अपने कम्प्यूटर पर अधिष्ठापित करने से पूर्व पंजीकृत कराना पड़ता है। इन्स्टॉल प्रोग्रामों की क्रैकिंग करके उपभोक्ता बिना पंजीकरण संख्या के प्रोग्रामों को अधिष्ठापित कर लेता है।

कुछ प्रोग्राम पंजीकरण से पहले सीमित समय के लिए प्रोग्राम को इन्स्टॉल करने की अनुमति देते है। ऐसा प्रोग्रामों को परखने के लिए किया जाता है। अपंजीकृत प्रोग्रामों की अक्सर एक नैक स्क्रीन होती है जिसमें एक प्रमुख संदेश प्रयोक्ता को पंजीकरण के लिए प्रेरित करता है या इसके कुछ गुण इन प्रोग्रामों को कुछ समय के लिए अनुप्रयुक्त कर देते है।

फ्रीक्स (Phreaks)– ये वे व्यक्ति हैं जो टेलीफोन व्यवस्था में अपर्याप्तता से लाभ उठाने के लिए पर्याप्त समय, प्रयास और यहाँ तक कि धन को भी लगा देते है इसमें फोन का वास्तविक नम्बर डायल करने से पूर्व 0 (शून्य) लगाना, दूसरे की बातों को उलट देना इत्यादि चालें शामिल हैं।

साइफरपंक्स (Cypherpunks)– ये वे व्यक्ति हैं जो यह अहसास करते है कि वे कम्प्यूटर सिस्टम की दृष्टि को रोककर ही अपने संदेशों को संकेतबद्ध कर सकते हैं। एतदर्थ वे ऐसे गोपनीय क्षेत्र की रचना करते है। जिसमें सेंध नहीं लगाई जा सकती। इसका तात्पर्य यह है कि संदिग्ध संदेशों को वैध रूप से सार्वजनिक संचार माध्यमों जैसे– टेलीफोन की लाइनों से भेजा जा सकता है।

रेवर्स (Ravers)– रेवर्स वे व्यक्ति हैं जो कला के उच्च वैयक्तिक कार्यों की रचना के लिए प्रौद्योगिकी का उपयोग करते हैं। भारत के प्रसिद्ध चित्रकार मकबूल फिदा हुसैन द्वारा कला का प्रयोग करके कम्प्यूटर से बनाई गई कलाकृतियाँ इसी श्रेणी में आती है। यद्यपि कम्प्यूटर की कुशल योग्यताओं द्वारा चित्र व आवाज का उपयोग कलात्मक उद्देश्यों के लिए किया जाता हैं। तथापि, इसका उपयोग ज्यादातर संदिग्ध उद्देश्यों के लिए बहुत आसानी से किया जाता है।

भारत–अमेरिका साइबर संबंधों का दृष्टिकोण

भारत–अमेरिका के द्विपक्षीय संबंध में साइबर मुद्दों पर सहयोग एक महत्वपूर्ण मुद्दा है। दोनों देशों के बीच सामरिक साइबर संबंध है जिसमें दोनों देशों के साझा मूल्य, समान दृष्टिकोण और साइबर स्पेस के लिए साझा सिद्धांत प्रतिपादित हैं। दोनों पक्ष व्यापक स्तर पर सहयोग को साइबर क्षेत्र में बढ़ाने तथा इसे सांस्थानिक बनाने के मूल्यों को मानते हैं। इस संदर्भ में दोनों देशों के बीच साइबर स्पेस से जुडे विविध मुद्दों पर 8 जून 2016 को सहमति बनी है।

साइबर अपराधों की शुरूआत अमेरिका से हुई। इसलिए सबसे पहले वहाँ साइबर कानून बना जिसमें कम्प्यूटर से होने वाले फर्जीवाड़े और दुरुपयोग को रोके जाने के प्रबंध किए गए। भारत में साइबर कानून की शुरूआत 9 जून 2000 में हुई। भारत विश्व भर में सूचना प्रौद्योगिकी के अग्रणी देशों में शामिल है। वह लगभग 125 मिलियन जनसंख्या के साथ विश्व का तीसरा सबसे बड़ा इंटरनेट उपभोक्ता है। जब सूचना अधिनियम 2000 देश में लागू किया गया उस समय अश्लील वेबसाइटों के माध्यम से देश में साइबर हमलों की बाढ सी आई हुई थी। उस लिहाज से यह कानून बहुत कमजोर और अप्रभावी था इसलिए वर्ष 2008 में सूचना प्रौद्योगिकी (संशोधन) अधिनियम – 2008 लागू किया गया। वर्ष 2009 में संशोधन के पश्चात् साइबर अपीलेट न्यायाधिकरण को साइबर अपील अधिकरण के रूप में जाना जाता है।

भारत में साइबर अपराध से निपटने के लिए कम्प्यूटर आपात प्रतिक्रिया दल किसी भी प्रकार के साइबर खतरे से निपटने के लिए सर्वोच्च निकाय है।

'स्टक्सनेट' नाम का वायरस 12 अक्टूबर को भारतीय उपग्रह इन्सेट–4बी में सामने आया था, जिसे चीन के तंत्र से भेजा गया था। अब तक के साइबर हमले का सबसे अधिक दुष्परिणाम स्टोनिया देश पर पड़ा है। वर्ष 2007 में हुए साइबर हमले में वहाँ की संसद सहित देश के प्रभावी तंत्र बैंक, शेयर बाजार, प्रशासन, टेलीफोन सेवाएं हवाई यातायात, ट्रेन, रक्षा तंत्रों की व्यवस्थाएँ अवरूद्ध हो गई थी। भारत में भी आए दिन मंत्रालय एवं विभागों पर साइबर हमले होते रहते हैं। भारत में भी सेना, खुफिया एजेंसियों और पुलिस भी साइबर खतरों से मुक्त नहीं है। भारत में राष्ट्रीय साइबर सुरक्षा नीति 2, जुलाई 2013 को जारी की गई। इंटरनेट के इस युग में भौगोलिक सीमाएँ नहीं रह गई है। ऐस में साइबर हमलों की संभावना बहुत अधिक है इसी खतरे के मद्देनजर इस नीति को लाया गया है। इसके महत्वूपर्ण प्रावधान निम्नलिखित हैं :

- राष्ट्रीय स्तर पर एक नोडल एजेंसी का गठन जो साइबर सुरक्षा से जुड़े सभी मामलों के बीच समन्वय का कार्य देखेगी।

- साइबर चुनौतियों से निपटने के लिए कानूनी ढ़ाँचा तैयार करना।

- कार्यरत साइबर सुरक्षा संगठन–कम्प्यूटर इमरजेंसी रेस्पांस टीम जो साइबर संकट की स्थिति में संदेशों के लेन–देन और दूसरे संगठनों से समन्वय का दायित्व संभालेगी।

- सभी संस्थान अपनी साइबर सुरक्षा नीतियों और व्यवस्थाओं के लिए एक निश्चित बजट बनाएँ। आज विश्व के अधिकांश देश यही निर्णय नहीं कर पा रहे हैं कि वैश्विक इंटरनेट का नियमन कैसे हो तब, जबकि साइबर सुरक्षा दूर की बात बनी हुई हैं।

तथापि, इसे निम्नांकित त्रि–स्तरीय स्तर पर अंगीकृत कर दूर करने का सफल प्रयास किया जा सकता है।

- अंतरराष्ट्रीय स्तर पर एक नियामक तंत्र का गठन जो राष्ट्रीय हितों को ध्यान रखते हुए कानून का उल्लंघन करने वालों को दंडित कर सके।

- राष्ट्रीय स्तर पर साइबर सुरक्षा एवं पारदर्शिता नीतियाँ बनानी चाहिए। राष्ट्रीय सुरक्षा के नाम पर आम जनता के निजी डाटा का लेन–देन करने वालों के विरूद्ध सख्त कार्यवाही होनी चाहिए एवं सोशल नेटवर्किंग साइट जनता के निजी डाटा शेयर करने पर प्रतिबंधित करना चाहिए।

- व्यक्तिगत स्तर पर जनता को साइबर सुरक्षा नियमों से अवगत कराने की आवश्यकता है।

वर्तमान समय की अनेक घटनाओं ने सूचना प्रौद्योगिकी कानून की निष्पक्षता, क्रियान्वयन व संवैधानिकता पर प्रश्न खड़े किए है और प्रतिदिन कोई न कोई घटना इस कानून की बहस को गरमा रही है। तथापि इस वैश्विक चुनौती से निपटने के लिए तमाम देशों को एक मंच पर आकर अपने दायित्व को निभाना होगा तभी इंटरनेट से जुड़ी अपराधिक क्रियाकलाप विफल किए जा सकेंगे। यदि साइबर अपराधों के विरूद्ध प्रारंभिक स्तर पर ही समुचित कार्यवाही नहीं की जाती तो मानवाधिकारों और मानवीय मूल्यों का पतन होने से कोई नहीं रोक सकता है। यह एक ऐसी परिस्थिति है जिससे कि आने वाली पीढी खतरे में पड़ सकती है।

○○○

2

पॉलिग्राफ परीक्षण और न्यायिक मान्यता

सतीश चन्द्र सक्सेना

पॉलिग्राफ सामान्यतः झूठ संसूचक (lie detector) परीक्षण कहलाता है जिसका प्रयोग व्यक्ति विशेष के कई शरीरवृत्तिक परिवर्तियों को माप कर किया जाता है। पॉलिग्राफ परीक्षण करते समय संदिग्ध व्यक्ति के शरीर पर चार से छः संवेदक (sensor) लगाए जाते हैं। पॉलिग्राफ मशीन कागज की एक पट्टी (जिसे ग्राफ कहते है) पर बहु संकेतों को रिकार्ड करती है। संवेदक आम तौर पर उस व्यक्ति के रक्त दाब, हृदयस्पंदन दर, श्वसन–दर तथा प्रस्वेदन– दर मापती है और इस बीच उस व्यक्ति से प्रश्न पूछे जाते है। यह परीक्षण उस प्राचीन परिकल्पना पर आधारित है कि व्यक्ति झूठ बोलते समय अधीरता महसूस करता है।

इस परीक्षण की प्रभाविताः

इस परीक्षण की यथार्थता तब ही से संदेह के घेरे में है, जब से यह परीक्षण लागू किया गया था। आविष्कार के आठ दशकों के बाद भी पॉलिग्राफ परीक्षण, न्यायालयों में मान्य नहीं है। कुछ देशों में झूठ संसूचकों का प्रयोग नौकरियों के इन्टरव्यू में पृष्ठभूमिक जांच और पुलिस अन्वेषणों के लिए किया जाता है ताकि संदिग्ध से अधिक से अधिक तथ्यों को उगलाया जा सके परंतु परिणाम, न्यायालय में मान्य नहीं हैं। विभिन्न अध्ययनों से पता चलता है यदि संदिग्ध व्यक्ति अपराध के अतिरिक्त अन्य किसी विषय के बारे में अधिक चिंतित है तो हो सकता है कि परिणाम सही न हों। इसके अतिरिक्त यदि व्यक्ति अपने चिंता–स्तर को नियंत्रित कर सकता है तो उस स्थिति में भी निष्कर्ष भ्रामक हो सकते है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते है कि मापित अनुक्रिया से अविश्वसनीय निष्कर्ष प्राप्त हो सकते है।

नार्को विश्लेषणः

पॉलिग्राफ परीक्षण के अतिरिक्त अपराधी के कथन की सत्यता स्थापित करने के लिए जांच कर्त्ता, नार्को विश्लेषण तकनीक का प्रयोग करते हैं। इस विश्लेषण में अपराधी के कथन की सत्यता जांच के लिए सत्यता सीरम (truth serum) और ब्रेनमैपिंग (brain mapping) का प्रयोग किया जाता है। परंतु, पॉलिग्राफ परीक्षण की ही भांति नार्को विश्लेषण और प्रयुक्त औषधियों के प्रभाव में किए गए ब्रेन मैपिंग परीक्षणों के निष्कर्ष न्यायालयों में स्वीकार नहीं किए जाते। इन परीक्षणों का प्रयोग मुख्यतः जांच पड़ताल के संदर्भ में ही किया जाता है। यू. एस. में कुछ ही मामलों में ब्रेन मैपिंग या फिंगर प्रिटिंग का प्रयोग अपराधी को दोष सिद्ध या उसकी निर्दोषता सिद्ध करने में किया गया है।

नार्को विश्लेषण क्या है?

लैटिन अभिव्यक्ति "in vino veritas" से तात्पर्य मदिरा में सत्यता (truth in wine) दर्शाता है कि ऐल्कोहॉल, एक **प्राचीनतम सत्यता सीरम** है। वैसे कहा भी जाता है कि व्यक्ति मदिरा के नशे में ऐसी बहुत सी बातें बक जाता है, जिन्हें वह सामान्यतः छिपाता है। ऐसी स्थिति में वह जो कुछ बक जाता है उसमें पूर्णतः या अंशतः सत्यता हो सकती है। शब्द नार्को विश्लेषण ग्रीक शब्द narke से व्युत्पन्न है जिसका अर्थ सुन्नता अर्थात numbness होता है। इस सुन्नता का प्रयोग मनोचिकित्सीय (psychotherapeutic) एवं पूछताछ तकनीक के रूप में किया जाता है। शरीर में सुन्नता उत्पन्न करने के लिए बार्बिट्रेट (barbitrate) औषधियों अथवा सत्यता सीरम प्रवेश कराया जाता है जिसमें बहुत से रहस्य उजागर हो जाते हैं। इन रहस्यों का निर्वचन विशेषज्ञ अपने ढंग से करते है। आजकल सत्यता सीरम के रूप में सोडियम थायोपेन्टल (Sodium thio pental) या सोडियम पेन्टोथाल (Sodium pentothal) का प्रयोग किया जाता है। इस औषधि से उच्चतर वल्कुटी मस्तिष्क प्रकार्यण (higher cortical brain functioning) में कमी आ जाती है। यह विश्लेषण इस सिद्धान्त पर आधारित है कि सत्य की तुलना में झूठ बोलना अधिक जटिल परिघटना (phenomena) है अतः वल्कुटी सक्रियता का स्तर कम होने से व्यक्ति सत्य बोलने पर विवश हो जाता है।

ब्रेन मैपिंग क्या हैं?

ब्रेन मैपिंग या फिंगर प्रिंटिंग प्रौद्योगिकी को विकसित करने का श्रेय अमरीका वैज्ञानिक लॉरेन्स फारवेल (Lawrence Far well) को है। यह परीक्षण इस तथ्य पर आधारित है क्या विशिष्ट जानकारी व्यक्ति (अपराधी) के स्मरण तंत्र में भंडारित है या नहीं। इस परीक्षण में कम्प्यूटर द्वारा प्रस्तुत संबद्ध शब्दों, चित्रों और ध्वनियों के प्रति मस्तिष्क, तरंग अनुक्रियाओं का मापन करता है। घटनाओं को स्मृतियों के रूप में भंडारित करने की मस्तिष्क में क्षमता होती है। मस्तिष्क के इस प्रकार्य का प्रयोग, अपराधी और निर्दोष व्यक्ति में अंतर स्थापित करने में किया जाता है। अपराधी का मस्तिष्क आपराधिक दृश्य पर आधरित घटित घटनाओं के अनुक्रम को भंडारित कर लेता है। परंतु, निर्दोष व्यक्ति के मस्तिष्क में इस प्रकार की घटनाओं का कोई भंडारण नही होता। ब्रेन फिगंर प्रिटिंग एक वैज्ञानिक विधि है जो किसी व्यक्ति में भंडारित जानकारी की उपस्थिति या अनुपस्थिति का पता लगाने का प्रयास करती है।

निष्कर्षः

उपर्युक्त जटिल वैज्ञानिक प्रक्रियाओं को सरल भाषा में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। पुलिस, सी.बी.आई. या अन्य जांच एजेंसियां जाँच पड़ताल के दौरान संदिग्ध अपराधी से सत्य उगलवाने

के लिए इन विधियों का प्रयोग करती हैं। संदिग्ध अपराधी पर इन प्रक्रमों का प्रयोग करने से पहले अभियोजन पक्ष को संबद्ध न्यायालय से अनुमति लेनी पड़ती है। बचाव पक्ष तथाकथित अपराधी के ऐसे रोग से ग्रस्त होने का उल्लेख भी कर सकता है जिससे व्यक्ति के स्वास्थ्य को हानि पहुंचने की आशंका हो। ऐसी स्थिति में न्यायालय यदि चाहे तो परीक्षण की अनुमति देने से पहले अपराधी की डाक्टरी जांच या डाक्टरी राय का आदेश दे सकता है।

जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है कि इन परीक्षणों से प्राप्त अनुमानित निष्कर्षों को केवल अतिरिक्त साक्ष्य के रूप में न्यायालय में प्रस्तुत किया जा सकता हैं। अपराधी को दोष सिद्ध करने के लिए ठोस सबूत आवश्यक होते हैं।

○○○

390 HRD / 2018—5

3

नवीन वैज्ञानिक उपलब्धियां

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

जीन–चिकित्सा से वंशानुक्रम अंधेपन में सुधार

अक्सर सर्दी, जुकाम, बुखार, सिरदर्द जैसी आम बीमारियाँ खान–पान की गड़बड़ी अथवा मौसम में परिवर्तन के प्रति लापरवाही के कारण दबोच लेती हैं। थोड़ी सावधानी और औषधियों के प्रयोग से ये ठीक हो जाती हैं। किंतु कुछ ऐसे रोग होते हैं जिन्हें बच्चे विरासत अथवा उत्तराधिकार में अपनी माता या अपने पिता से प्राप्त करते हैं। उदाहरण के लिए "हीमोफीलिया"। हीमोफीलिया (अधिरक्तस्राव) के रोगी को यदि चोट लग जाये और खूब बहने लगे तो रक्त का थक्का नहीं बनता और अत्यधिक रक्तस्राव होने से मृत्यु भी हो जाती है। हीमोफीलिया की वाहक माता होती है। पुत्री के शरीर में यह हीमोफीलिया जीन रहने से अत्यधिक रक्तस्राव होने पर मृत्यु हो जाती है। इसी प्रकार अंधापन भी जन्मजात रोग है जो उत्तारधिकार के रूप में प्राप्त होती है। ये रोग आनुवंशिक रोग कहलाते हैं और ये शरीर की कोशिकाओं में पाये जाने वाले कारकों (जीन्स) के कारण उत्पन्न होते हैं। जीन एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में लक्षणों के वाहक होते हैं। अलग–अलग आनुवंशिक रोगों के लिए अलग–अलग तरह के जीन उत्तरदायी होते हैं।

वास्तव में जीन चिकित्सा अत्यन्त कठिन कार्य है। सच्चाई तो यह है कि जीन चिकित्सा की शुरूआत हो चुकी है और इसके प्रारंभकर्ता नेत्र शल्य–क्रिया विशेषज्ञ डॉ. जेम्स बेनब्रिज ने तो कमाल ही कर दिया है। बेनब्रिज मूरफील्ड्स आई हॉस्पिटल और यू सी उल इंस्टीट्यूट ऑफ ऑपथैल्मॉलॉजी से सम्बद्ध हैं। यूनिवर्सिटी कॉलेज ऑफ लंदन के विज्ञानियों ने ऐसे 8 रोगियों पर आनुवंशिक चिकित्सा के प्रयोग किए जो आँख के "लिवर कंजेनिटल एमारॉसिस" रोग से ग्रस्त थे। यह रोग असाधारण नेत्र रोग है। इस चिकित्सा के परिणाम उत्साहवर्धक मिले। 8 में से 3 रोगियों की दृष्टि (नज़र) में सुधार दिखा।

उत्तराधिकार के रूप में अंधापन या कमजोर नजर एक ऐसे जीन के अभाव के कारण उत्पन्न होता है जो प्रकाश को खोज निकालता है। डॉ. बेनब्रिज के प्रयोग में परावर्तित जीन (म्यूटैन्ट जीन) को एक प्रकृत (नॉर्मल) जीन की वर्किंग कॉपी से

बदल दिया गया। विज्ञानियों ने एक ऐसा तरीका ढूँढ लिया जिसके द्वारा नए जीन को कोशिकाओं में प्रविष्ट कराया जा सकता है। एक अयोग्य निष्क्रिय हो गए विषाणु (Virus) को लेकर उसके अंदर जीन को पैक कर दिया गया। अयोग्य विषाणु जीन को कोशिकाओं के अंदर ले जाने का कार्य अर्थात् वाहक का कार्य करता है और दृष्टि पटल (रेटिना) के पीछे एक स्थान (स्पॉट) पर मुक्त कर देता है। इस प्रयोग के लिए सूक्ष्म तकनीक का सहारा लिया जाता है।

इस नवीन प्रयोग में उन व्यक्तियों (रोगियों) को शामिल किया गया जो लिवर कंजेनिटल एमॉरॉसिस (एल सी ए) से ग्रस्त थे। इस रोग का कारण है एक जीन प्रोटीन, आर पी ई 65 जो उत्परिवर्तित होकर दोषपूर्ण हो जाता है। प्रारंभ में ही प्रयोगों के परिणाम उत्साहजनक मिले। रात्रि में दृष्टि में कुछ सुधार हुआ और किसी प्रकार के अनुषंगी प्रभाव नहीं दिखे। किन्तु अभी कुछ नहीं कहा जा सकता है कि कितने समय तक दृष्टि सुधार बना रहेगा।

फिर भी इस सच्चाई की अनदेखी नहीं की जा सकती है कि [illegible] के अन्य अंगों की तुलना में, जीन चिकित्सा के लिए आँख सर्वाधिक उपयुक्त अंग है। यह पहला ऐसा अंग है जिस पर जीन चिकित्सा की गई है। इसे जीन चिकित्सा की शुरूआत माना जा सकता है। आँख पर ही चिकित्सा करने का कारण यह है कि आँख छोटा अंग है और जो विषाणु जीन के वाहक का कार्य करता है वह थोड़े समय के लिए ही आँखों के ऊतकों में रह सकता है और इसके अन्य अंगों में फैलने का भय भी नहीं है।

कैंसर का उपचार संभव है

आजकल अनेक असाध्य और जानवेला रोग उपचार के घेरे में आते जा रहे हैं। पहले जब कोई व्यक्ति क्षय रोग (टी बी–ट्यूबर कुलोसिस) से ग्रस्त हो जाता था, तब रोगी के साथ–साथ परिवार के लोग भी उसके बचने की आशा छोड़ देते थे। रोगी को साफ हवा के लिए पहाड़ी स्थानों पर रहने की सलाह दी जाती थी। किंतु अब क्षयरोगी औषधियों के नियंत्रित सेवन से नीरोग हो जाते हैं।

इसी तरह कैंसर का नाम सुनते ही भय उत्पन्न हो जाता है। इसका कारण यह है कि जनमानस में ऐसी धारणा व्याप्त है कि कैंसर के रोगी की अंततः मृत्यु हो जाती है। किन्तु अब इस सोच में परिवर्तन की आवश्यकता है, क्योंकि अब कैंसर का उपचार संभव हो गया है। इसलिए अब न तो कैंसर रोगी को और न ही उसके परिवार वालों को घबराने या निराश होने की आवश्यकता है। आवश्यकता है कैंसर के संबंध में लोगों को जागरूक और शिक्षित करने की।

कैंसर पर चिकित्सकों और कैंसर से पीड़ित जीवित व्यक्ति समय समय पर जो विचार व्यक्त करते रहते हैं उन पर ध्यान देने की जरूरत है। वैसे 'विश्व स्वास्थ्य संगठन' की एक चेतावनी डरावनी लगती है और वह यह कि कैंसर रोगियों की वर्तमान संख्या सन् 2030 तक बढ़कर 15.5 मिलियन हो जायेगी। फिर भी आज चिकित्सक बल देकर कहते है कि यदि कैंसर की पहचान रोग की प्रारंभिक अवस्था में हो जाये तो मृत्यु अवश्यम्भावी नहीं है।

वैदेही इंस्टीट्यूट ऑफ ऑनकॉलोजी' से जुड़े वरिष्ठ अर्बुद विज्ञानी एवं चिकित्सक डॉ. गणेश का कहना है कि यदि कोई व्यक्ति कैंसरग्रस्त हो गया है तो इसका यह मतलब नहीं है कि उसकी मृत्यु हो जायेगी। बहुत से रोगी जो जीवित हैं, उन्होंने नए कैंसर रोगियों को अपने अनुभव के आधार पर ढाढस बँधाने के लिए छोटे–छोटे समूह भी बना लिए हैं। वे बताते हैं कि कैंसरग्रस्त व्यक्ति के लिए दुनिया का अंत नहीं हो जाता है। आज कैंसर चिकित्सा के लिए अनेक नई तकनीकें और नई–नई औषधियाँ आविष्कृत हो गई हैं जिनके माध्यम से कैंसररोगी रोगमुक्त हो जाता है। किन्तु रोगियों और उनके परिवार वालों को धैर्य से काम लेना होगा। आने वाली कठिनाइयों का डटकर मुकाबला करना होगा।

चिकित्सकों का कहना है कि सबसे पहले रोगियों और उनके परिवारों के लोगों को भयभीत होने के बजाय कैंसर रोग को ठीक से समझ लेना चाहिए। ऐसा चिकित्सक से सहयोग के लिए आवश्यक है। रोग के विषय में जानकारी के बाद रोगी की प्रतिक्रिया साधारणतया उसकी मानसिक अवस्था पर निर्भर करती है।

यह सच है कि आने वाले समय में कैंसर रोगियों की संख्या में वृद्धि होगी लेकिन वर्तमान में कैंसर रोगियों की सफल चिकित्सा के लिए नई औषधियाँ और नए विकल्प भी विद्यमान हैं। रोगियों के रोग की अवस्था को ध्यान में रखते हुए चिकित्सा का चुनाव करके सफलतापूर्वक उपचार किया जा सकता है।

कैंसर चिकित्सा के संबंध में डॉ. पारिजात राव, निदेशक, 'लेबोरेटरी ऑपरेशन्स, क्रायो–सेव इण्डिया' के विचार विशेष रूप से उल्लेखनीय है। डॉ. परिजात राव के अनुसार कैंसर की वर्तमान नई चिकित्सा विधियों–कीमोथैरेपी (रासायनिक औषधियाँ), रेडियो थैरेपी (रेडियोसक्रिय किरणों द्वारा), ऑपरेशन (शल्यक्रिया) और स्टेमसेल चिकित्सा में स्टेम सेल चिकित्सा का विशेष महत्व है। वास्तव में स्टेम सेल चिकित्सा उपचार की तीव्रगति वाली पद्धति है। ऐसे रोगी जिनकी पहचान कैंसर रोगी के रूप में हो चुकी है, उनका उपचार कैंसर के प्रकार और 'साइबरनाइफ' जैसे उपकरण पर निर्भर करता है। कैंसर रोगियों के लिए यह आशा की नई किरण है।

कैंसर रोग के विषय में जनसामान्य में जागरूकता उत्पन्न किए जाने के लिए 'कैंसर चिकित्सा उपचार केन्द्र' विशेष रूप से सक्रिय हैं। एक अंतरराष्ट्रीय संस्था–'यूनियन फॉर इंटरनेशल कंट्रोल' ने 4 फरवरी को प्रतिवर्ष 'विश्व कैंसर दिवस' मनाने का संकल्प किया है ताकि लोग कैंसर रोग के प्रति जागरूक हो सकें और प्रारंभिक अवस्था में ही कैंसर रोगी की पहचान करके उसका उपचार प्रारंभ भी कर दिया जाये। डॉ. गणेश कहते हैं– "हम इस संदेश को घर–घर तक पहुँचाना चाहते हैं क्योंकि एक उम्र हो जाने के बाद कैंसर रोग के लिए उसके शरीर की जाँच करना आवश्यक हो जाता है।"

अतएव कैंसर का इलाज संभव है। इस संदेश को घर–घर तक पहुँचाने की आवश्यकता है।

'मैमथ' शिकारियों ने धरती का ताप बढाने की शुरुआत की

पुराऐतिहासिक मौसम परिवर्तन पर किए गए एक अध्ययन के अनुसार हज़ारों वर्ष पूर्व जब मनुष्य ने जीवाश्म ईंधन को जलाने की शुरुआत भी नहीं की थी, उस प्राचीन समय के हाथियों जैसे विशाल प्राणी 'मैमथ' के शिकारियों ने 'मैमथ' के शिकार के द्वारा धरती के उत्तरी क्षेत्र को अपेक्षाकृत गर्माने की शुरूआत कर दी थी।

पत्तियों को कुतरने वाले, ऊन से आच्छादित शरीर वाले 'मैमथों' की मृत्यु के बाद बौने भूर्ज या भोजवृक्ष (ड्वार्फ बर्च ट्रीच) तेज़ी से संख्या में बढ़ने लगे क्योंकि इन वृक्षों की पत्तियाँ कुतरने वाले मैमथ नहीं रहे। ये बर्च वृक्ष उत्तरी ध्रुव प्रदेश में और उसके चारों ओर फैल गए और इससे बंजर क्षेत्र हरा–भरा और अंधियारा हो गया। इससे 'कार्नेगी इंस्टीट्यूट ऑफ़ साइंस' के शोधकर्ता इस परिणाम पर पहुँचे कि इसके प्रभाव से उत्तरी ध्रुव प्रदेश का ताप अपेक्षाकृत बढ़ गया है।

उत्तर की ओर पेड़–पौधों के विस्तार का प्रभाव मौसम पर पड़ा और इसका कारण 'अलबेदो प्रभाव' (Albedo Effect) था। अलबेदो प्रभाव में होता यह है कि सफेद बर्फ की चादर के स्थान पर, पेड़–पौधों का विस्तार हो जाता है। पेड़–पौधे सूर्य के प्रकाश का अवशोषण करते हैं और इससे अपने आप बार–बार होने वाला उष्ण–चक्र उत्पन्न हो जाता है।

यह खोज 'जियोफिजिकल रिसर्च लेटर्स जर्नल' में प्रकाशित हुई है, के अनुसार ऊर्जा के लिए जब मनुष्य ने कोयला और तेल को जलाना प्रारंभ नहीं किया था उसके बहुत पहले मानव की गतिविधियों द्वारा पृथ्वी के मौसम में परिवर्तन किया गया, किन्तु इसकी तुलना में प्राचीन समय के शिकारियों का धरती का ताप बढ़ाने में योगदान बहुत कम रहा। फिर भी यदि मैमथ के शिकारियों ने उत्तरी ध्रुव का ताप बढ़ाने में सहायता की तो मनुष्य द्वारा मौसम में परिवर्तन की यह पहली घटना है और इसके बाद प्राचीन कृषिकर्म हैं जिसने मौसम को प्रभावित किया, ऐसा कहना है क्रिस फील्ड (Cris Field) का, जो कार्नेगी संस्थान के ग्लोबल इकोलॉजी विभाग के निदेशक और अध्ययन के परिणामों के सहलेखक हैं। विशेषज्ञों का मानना है कि मैमथ के प्राचीन शिकारियों की मौसम को अपेक्षाकृत गर्म करने की निश्चित रूप से जिम्मेदारी है, भले ही बहुत कम हो।

जंगली बिच्छूघास का अभिनव प्रयोगः बुलेट प्रूफ जैकेट

बिच्छूघास एक काँटोभरा जंगली पौधा है जो साधारणतया पहाड़ों पर पाया जाता है, किन्तु मैदानों में भी उगता पाया गया है। पौधे का नाम बिच्छूघास इसलिए पड़ा क्योंकि इसकी पत्तियों पर पाए जाने वाले रोयें जब मनुष्य की त्वचा से छू जाते हैं तो बहुत ही पतली सूई की तरह त्वचा में प्रवेश कर जाते हैं और टूट जाते हैं। अंदर वे रोयें जलन उत्पन्न करते हैं। इससे ऐसा अनुभव होता है जैसे बिच्छू ने डंक मार दिया हो। किन्तु जहाँ ये पौधे उगते हैं वहीं आस–पास जंगली पालक के नाम से पहाड़ी पौधा भी पाया जाता है, जिसकी पत्तियों का रस जलन वाले स्थान पर लगाने से जलन समाप्त हो जाती है। जंगली पालक नामक इस पहाड़ी पौधे का वानस्पतिक नाम रुमेक्स (Rumex) है और यह पॉलीगोनेसी (Polygonaceae) कुल का सदस्य है।

बिच्छूघास कंटीला पौधा है और पहाड़ी क्षेत्रों में अनेक नामों से जाना जाता है। इसे सिन्ना, डोलना, कंडाली आदि नामों से जानते हैं। इसका वानस्पतिक (वैज्ञानिक) नाम अर्टिका (Uritica) है। अर्टिका की कई प्रजातियाँ (स्पीशीज़) पाई जाती हैं। यह अर्टिकेसी (Urticaceqe) कुल का सदस्य है।

पुराने समय में बिच्छूघास के तनों के रेशों से कपड़े बनाए जाते थे। इसका प्रयोग आयुर्वेद में पीड़ाहर औषधियों के रूप में भी किया जाता था किन्तु वर्तमान में बिच्छूघास का एक अभिनव उपयोग सामने आया है।

उत्तराकाशी से प्राप्त एक समाचार के अनुसार राज्य के 'बांस एवं रेशा विकास परिषद्' के साथ ही साथ 'हिमालयी आजीविका परियोजना' की सहयोगी संस्था "श्रद्धा" ने बिच्छूघास के रेशे से बहुत मज़बूत रेशों से बुलेटप्रूफ जैकेट और कपड़े बनाने की तैयारी शुरू कर दी है। बिच्छूघास के रेशे मजबूत होते हैं। रेशों की गुणवत्ता इतनी अधिक होती है कि वे लम्बे समय तक खराब नहीं होते हैं और मज़बूत बने रहते हैं।

अब कुछ और कम्पनियाँ मैदान में आ गई हैं। अहमदाबाद की 'थ्रेड स्टोरी' नामक एक कम्पनी ने तो उत्तराकाशी की संस्थाओं से बिच्छूघास के रेशों की खरीद भी प्रारंभ कर दिया है। यही नहीं, जर्मनी की एक संस्था के साथ मिलकर इन रेशों के उपयोग से सैनिकों के लिए बुलेटप्रूफ जैकेट और कपड़े बनाने की योजना बना रही है। इसके लिए कच्चा माल उत्तरकाशी से मुहैया कराया जायेगा। इस संबंध में राज्य सरकार का सहयोग है। राज्य सरकार ने रेशों का समर्थन मूल्य भी निर्धारित कर दिया है, जो 30/– (तीस रूपये) प्रति किलो है। आशा की जानी चाहिए कि इस संबंध में कार्य तेज़ी से किया जायेगा और शीघ्र ही बिच्छूघास की सहायता से बुलेटप्रूफ जैकेट बना लिए जायेंगे।

क्या ओजोन छिद्र की क्षतिपूर्ति खतरनाक है?

ओजोन परत धरती के जीवधारियों को सूर्य की घातक पराबैंगनी किरणों से रक्षा करती है। 1980 के दशक के मध्य, विज्ञानियों ने पता लगाया कि ओज़ोन की परत में छिद्र हो गया है, जो बढ़ रहा है। विज्ञानियों ने चेतावनी दी थी कि यदि इस छिद्र के माध्यम से सूर्य की किरणें धरती पर आ गई तो ऐसी तबाही मचायेंगी जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती है। वैसे "छिद्र" शब्द थोड़ा भ्रामक है। वास्तव में ओज़ोन की पर्त जिस स्थान पर इतनी झीनी हो जाती है कि सूर्य की पराबैंगनी किरणें इसे भेद सकती हैं तो ओज़ोन परत के ऐसे झीने स्थलों को ही छिद्र कहा जाता हैं। ओज़ोन परत में छिद्र बनने का कारण है क्लोरोफ्लुओरोकार्बन जो वास्तव में 40 गैसों का सम्मिश्रण है। ये गैसें मुख्य रूप से प्रशीतकों, रेफ्रीजरेटरों और एरोसॉल कैन्स के प्रयोग से निकलने वाले रासायनिक यौगिक हैं। ये यौगिक ओज़ोन परत को क्षति पहुँचाते हैं।

बात 1987 की है जब अनेक देशों ने अंतरराष्ट्रीय समझौते के तहत उपरोक्त गैसों का उत्सर्जन कम करने की पहल की ताकि अंटार्कटिका में ओज़ोन छिद्र का प्रभाव कम हो सके। ओज़ोन परत में छिद्र से सारा संसार भयाक्रांत हो रहा था। किंतु एक वैज्ञानिक खोज जहाँ एक ओर सुखद है वही दूसरी ओर काफी चौंकाने वाली भी है।

ओज़ोन की परत से संबंधित समाचार मिला है जिससे पता चला कि ओज़ोन की झीनी परत धीरे–धीरे पुनः मोटी हो रही है। यह सुखद समाचार है। किन्तु सिक्के का दूसरा पहलू भी है। यहाँ एक सहज–सा प्रश्न उठता है कि जब घातक पराबैंगनी किरणें धरती तक पहुँच नहीं सकेंगी तो भय कैसा?

भय का कारण है "जियोफिजिकल रिसर्च लेटर्स" का एक अंक जो कुछ ग्लोबल वार्मिंग पूर्व प्रकाशित हुआ था। प्रकाशित शोधपत्र के अनुसार "ओज़ोन छिद्र" वैश्विक तापन (ग्लोबल वार्मिंग) को कम करने में मददगार है। ओज़ोन छिद्र विशेष प्रकार के नम बादलों का निर्माण करता है। ये बादल साधारण बादलों से भिन्न होते हैं और ये नम बादल, दक्षिणी ध्रुव (अंटार्कटिका) क्षेत्र को वैश्विक तापन से बचाते हैं।

लीड्स यूनिवर्सिटी में वायुमंडलीय विज्ञान के प्रोफेसर और शोधपत्र के सहलेखक केन कार्सलॉ का कहना है– "साररूप में यह दक्षिणी गोलार्ध में तापन की गति को तीव्र कर देगा।"

अपने शोध के लिए वैज्ञानिकों का यह दल सन् 1980–2000 के बीच रेकॉर्ड किए गए मौसम–संबंधी आँकड़ों में वैश्विक वायु की गति संबंधी आँकड़ें भी सम्मिलित थे, जिन्हें यूरोप के "सेन्टर फॉर मीडियम रेंज वेदर फोरकास्ट्स" ने रेकॉर्ड किया था।

इन आँकड़ों से एक बात जो स्पष्ट रूप से उभर कर सामने आई वह यह कि ओज़ोन परत के छिद्र ने तेज़ गति वाली हवाओं को जन्म दिया जिसके कारण समुद्री लवण (सी साल्ट) को ऊपर के वातावरण में खींच लिया गया और इससे नम बादल निर्मित हो गए। ये बादल सामान्य बादलों से भिन्न थे और इनमें सूर्य की शक्तिशाली किरणों को परावर्तित करने की क्षमता होती है। वैज्ञानिक इससे इस परिणाम पर पहुँचे कि ये नम बादल दक्षिणी ध्रुव क्षेत्र के वातावरण की तापन से बचाव करने में सहायता करते हैं। भविष्य क्या ओज़ोन छिद्र की क्षतिपूर्ति से निर्धारित होगा? क्या यह सच नही है कि हम हरित पौधगृह गैसों का प्रयोग बढ़ाते जा रहे हैं, जिससे वायु के झोकों की गति पूरे वर्ष बढ़ती रहती हैं? "और इसी के साथ जूडिथ पर्लविट्ज इंगित करती हैं कि ओज़ोन छिद्र की पूर्णरूपेण क्षतिपूर्ति होकर 1980 की स्थिति तक पुनः पहुँच सकने की आशा नहीं है, कम से कम वर्ष 2060 तक तो नहीं, जैसा कि इस मुद्दे पर "वर्ड मीटियोरोलॉजिकल ऑर्गनाइजेशन" की एक प्रकाशित रिपोर्ट से लगता है।

ऐसी दशा में हमारे लिए यह श्रेयस्कर होगा कि हम इस विषय पर और विस्तृत शोध करें ताकि परिणामों की पुष्टि हो सके।

○○○

4

अवरक्त स्पेक्ट्रमिकी

डॉ. अजय कुमार चतुर्वेदी

अवरक्त विकिरण का क्षेत्र दृश्य और सूक्ष्म तरंग क्षेत्र के मध्य होता है। इसे चार भागों में विभाजित करते हैं।

1. फोटोग्राफीय क्षेत्र (Photographic region) यह क्षेत्र 1.2 माइक्रोन तक ही रहता है।

2. अत्यधिक निकट अवरक्त क्षेत्र (Very Near Infrared region) यह क्षेत्र 1.2 से 2.5 माइक्रोन तक होता है। इसे अधिस्वरक क्षेत्र (Overtone region) भी कहते हैं।

3. निकट अवरक्त क्षेत्र (Near Infra red region) यह क्षेत्र 2.5 से 25 माइक्रोन तक होता है। इस क्षेत्र को घूर्णन कंपन्न क्षेत्र (Rotation Vibration Region) भी कहते हैं

4. सुदूर अवरक्त क्षेत्र (Far-Infra-red region) यह क्षेत्र 25 से 400 माइक्रोन तक होता है। दूसरे शब्दों में यह 4000 सेमी.$^{-1}$ तरंग संख्या वाला क्षेत्र इसे घूर्णन क्षेत्र भी कहते है। सामान्यतया अवरक्त स्पेक्ट्रम 2.5 से 25 माइक्रोन या 4000–400 से सेमी.$^{-1}$ तरंग संख्या वाला क्षेत्र होता है। इस परास (Range) में अध्ययन करने पर यौगिक के अणु के कम्पन के विषय में महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती हैं और जिससे आण्विक संरचना ज्ञात हो जाती है।

किसी अणु द्वारा अवरक्त विकिरणों के अवशोषण के लिए दो दशाएँ आवश्यक हैं।

1. किसी यौगिक के अणु द्वारा अवशोषण तभी होगा, जब अणु के कुछ भाग की कम्पन आवृत्ति आपतित (incident) विकिरण की आवृति के समान हो। यह तभी होगा जब कम्पन और विकिरणों की आवृत्ति समान हों। अणु की कम्पन गति के फलस्वरूप विद्युतीय या चुंबकीय क्षेत्र उत्पन्न होते हैं जो पारस्परिक क्रिया कर अवरक्त स्पेक्ट्रम देता हैं। यह तभी होगा जब कम्पन और विकरणों की आवृत्ति समान हो।

2. यौगिक का अणु द्विध्रुवीय होना चाहिए। साथ ही अवरक्त विकिरणें के अवशोषण से अणु के द्विध्रुवीय आघूर्ण (Dipolemoment) में परिवर्तन होना चाहिए। यदि ऐसा नहीं होता तो अवरक्त विकिरणों का अवशोषण नहीं होगा।

विकिरण स्रोत– कई प्रकार के स्रोत उपयोग किए जाते हैं :

(i) **ग्लोवर स्रोत** – 4 मि.मी. परिधि तथा 50 मि.मी. की लंबाई की छड़ होती है जो सिलीकन कार्बाइड की बनी होती है। 1300° – 1700° से. तक गर्म करने पर अवरक्त विकिरण प्राप्त होते हैं।

(ii) **नर्न्सट ग्लोवर** – 2 मिमी. परिधि 30 मिमी. लंबाई की खोखली छड़ जैसी होती है। यह लैन्थेनाइडस के ऑक्साइडों, जिर्कोनियम तथा थोरियम के मिश्रण से बनी होती है। इसे 1500°–2000° से. तक गर्म करके अवरक्त विकिरण प्राप्त करते हैं।

(iii) **तापदीप्त लैम्प** – यह साधारण तापदीप्त लैम्प होता है। जो समीप अवरक्त यंत्रों में होता है।

(iv) **मर्करी आर्क** – यह एक सुदूर अवरक्त यंत्रों में होता है।

एकवर्णित्र (Monochromators)- प्रतिदर्श द्वारा केवल विशिष्ट आवृति ही अवशोषित होती है। प्रकाश स्रोत से उत्सर्जित विकिरण विभिन्न आवृति के होते हैं। आवृति का चयन एकवर्णित्र द्वारा होता हैं ये दो प्रकार के होते हैं। **अ. प्रिज्म एकवर्णित्र**– सामान्यता सोडियम क्लोराइड व खनिज लवण प्रिज्म वर्णित बनाते हैं। इसकी रेंज 650–4000 सेमी ^{1} होती है। लीथियम फ्लुओराइड, कैल्शियम फ्लुओराइड प्रिज्म भी प्रयुक्त होते हैं।

ब. **ग्रटिंग एकवर्णित्र**– इसमें अधिक परिक्षेपण होता है। इसका उपयोग छोटे प्रिज्म के साथ किया जाता है।

3. **प्रतिदर्श सैल**– अवरक्त स्पेक्ट्रमिकी ठोस, द्रव, गैस अवस्थाओं में प्रयुक्त होती है। प्रत्येक अवस्था में प्रतिदर्शी जिस सैल में भरा जाता है, वह अवरक्त विकिरणो के लिए पारदर्शी पदार्थ से बनी होनी चाहिए। सामान्यतया सोडियम क्लोराइड और पोटैशियम ब्रोमाइड का उपयोग सैल बनाने में किया जाता है। ठोस प्रतिदर्शी का चार तकनीक से स्पेक्ट्रम का अध्ययन करते हैं :

(i) **विलयन के रूप में** – यदि ठोस विलायक में विलेय हो तब ही विलयन बनाकर प्रतिदर्श सैल में भरा जाता हैं। सामान्यता क्लोरोफार्म, कार्बन टेट्रा क्लोराइड, कार्बनडाई सल्फाइड विलायक के रूप में उपयोग में लाए जाते हैं।

(ii) **ठोस फिल्म के रूप में** – यदि ठोस अक्रिस्टलीय हो तब इसके विलयन का वाष्पन कर सोडियम क्लोराइड या पोटेशियम ब्रोमाइड सैल की सतह पर निक्षेपित कर पतली फिल्म बना ली जाती है।

(iii) **मूल तकनीक** – महीन पिसे प्रतिदर्श को खनिज तेल न्यूजोल के साथ अच्छी तरह मिलाकर उपयोग में लाते हैं। यह विधि गुणात्मक विश्लेषण के लिए उपयुक्त है न्यूजोल स्वयं 2915, 1462, 1376 तथ 719 सेमी$^{-1}$ पर अवशोषण उच्चिष्ठ देता है।

(iv) **टिकिया तकनीक** – प्रतिदर्श की अल्प मात्रा का 100 गुना पोटैशियम ब्रोमाइड में मिलाकर महीन चूर्ण बनाते हैं। उच्च दाब लगाकर 1.2 मिमी. मोटी 1 सेमी परिधि की टिकिया बना कर उपयोग की जाती है।

390 HRD / 2018—7

4. कई प्रकार के संसूचक उपयोग में लाए जाते हैं।

(i) **बोलोमीटर** – इसमें पतला धात्विक चालक होता है।

(ii) **थर्मिस्टर** – धात्विक ऑक्साइड का मिश्रण होता है।

(iii) **गोले सैल** – यह एक छोटे धातु सिलिंडर के रूप में होता है।

(iv) **प्रकाश चालकता सैल** – प्रकाश पडने से चालकता उत्पन्न होती है।

(v) **ताप विद्युत युग्म** – विभिन्न ताप पर विद्युत उत्पन्न होगी। जो सूचनाएँ देती हैं।

(vi) **रिकार्डर** – कागज पर विभिन्न तरंग दैर्ध्यों के अवशोषण बैंड अंकित होते हैं।

बैंडों से प्रकार्यात्मिक समूहों की पहचान हो जाती है। विभिन्न समूहों की व्याख्या कर, यौगिक की पहचान कर ली जाती है।

अवरक्त स्पेक्ट्रमिकी कार्बनिक पदार्थों की संरचना ज्ञात करने में बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुई है। कार्बनिक पदार्थ के अणु में विभिन्न द्रव्यमानों के परमाणुओं को गैद और आबंधों को कमानी या स्प्रिंग (Spring) मानते हैं सहसंयोजक आबंधों की प्रकृति कमानीदार होने के कारण सदैव कंपन करती है। कार्बनिक अणुओं में दो प्रकार के कंपन पाए जाते हैं।

1. तनन (Streching)

2. बंकन या विरूपण (bending or deformation)

तनन कम्पन– जब दो परमाणुओं की बीच (Compress) की दूरी घटती (Strech) और बढ़ती है तो कंपन तनन कंपन उत्पन्न होते हैं। ये कम्पन द्विपरमाणु अणुओं में होते हैं।

बंकन या विरूपण (bending or deformation) – यह कम्पन उन अणुओं में होता है। जिनमें दो या अधिक परमाणु प्रत्यक्ष रूप से जुडे नहीं होते। इस कंपन में परमाणुओं की आबंध अक्ष के सापेक्ष, स्थिति बदल जाती है। इस प्रकार कम्पनों के कारण आबंध कोण में परिवर्तन हो जाता है।

अणु के आबंध का तनन करने की अपेक्षा बंकन करना सरल होता है। बंकन कंपनों के लिए कम ऊर्जा की आवश्यकता होती है। फलस्वरूप छोटी तरंग संख्या 1656–667 सेमी$^{-1}$ पर्याप्त होती हैं। जब कि तनन कंपन के लिए 4000–66 सेमी$^{-1}$ तरंग संख्या आपेक्षित होती है।

कार्बनिक यौगिकों में दोनों प्रकार के कम्पनों के कारण अवरक्त स्पेक्ट्रम प्राप्त होता है। अणुओं के आबंधों में तनन और बंकन कंपन, निश्चित क्वाटम आवृत्यिों पर होते हैं। जब अणु से होकर विकिरण गुजरता है तब अणु, ऊर्जा का अवशोषण करता हैं।

जिसमें कम्पन के आयाम में वृद्धि हो जाती है। इसके फलस्वरूप शिखर प्राप्त होते हैं।

ततन कम्पन – ततन कम्पन आबंधों की दिशा में होते हैं। फलस्वरूप आबंध लंबाई में परिवर्तन होता है। ये कम्पन दो प्रकार के होते हैं।

1. सममित कम्पन – जब कम्पन में आबंध लम्बाई, समान रूप में कम या अधिक होती है तब कम्पन को सममिति कम्पन कहते हैं।

2. असममित कम्पन – जब कम्पन में आबंध लंबाई असमान रूप से कम और अधिक हो तो इसे असममित कंपन कहते हैं। ऐसा इस कारण होता है कि एक आबंध में संपीडन और दूसरे आबंध में विस्तार होता है। अतः कम्पन असममित होते हैं।

बंकन कम्पन – ऐसे कम्पन जिनमें कोई समूह एकसाथ आबंध दूरी के लम्बवत कम्पन करता है। ऐसे कम्पन बंकन कम्पन कहलाते हैं। इनमें कम ऊर्जा की आवश्यकता होती है। ये कम्पन ततन कम्पन की अपेक्षा निम्न तरंग संख्या पर होते हैं। बंकन कम्पन दो प्रकार के होते हैं। 1. तल में विकृति कम्पन 2. तल बाह्य विकृति कम्पन कहते हैं।

तल में विकृति कम्पन– जब कम्पन से दो आबंधों के मध्य कोण में अंतर आता है तब विकृति, तल में दृष्टिगोचर होती है। अतः इसे तल विकृति कम्पन कहते है। ये दो प्रकार के होते हैं। 1. सिजरिंग 2. रोकिंग

कैंची रूपी कम्पन – इस कम्पन में परमाणुओं का कम्पन, कैंची के दो फलकों के समान होता है। इसलिए इसे कैंचीरूपी कम्पन कहते हैं। दोनों परमाणु एक दूसरे के निकट आते हैं फिर एक साथ दूर हो जाते हैं। इससे आबंधों के मध्य कोण बदलते रहते हैं। कोण के बदलने से तल में विकृति होती है।

रोकिंग जब अणु में परमाणु एक साथ एक ही दिशा में बिना विकृति को कम्पन करते हैं तब इस कम्पन को रोकिंग कहते हैं इसमें आबंधों के मध्य कोण अपरिवर्तित रहते हैं।

तल बाह्य विकृति – जब कम्पन से आबंध और परमाणुओं की स्थिति में परिवर्तन आता है। तब ये कंपन उत्पन्न होती है। ये कम्पन दो प्रकार के होते हैं। 1. टुइस्टिंग 2. बेगिंग

टुइस्टिंग (Twisting) जब अणु में परमाणुओं के कम्पन तल के लम्बवत्, तथा एक परमाणु तल की ओर हो और दूसरा कम्पन के विपरीत हो। तब ऐसे कम्पन को टुइस्टिंग कहते हैं।

बेगिंग (Wagging) जब परमाणु के कम्पन, तल के लम्बवत् हों तथा दोनों परमाणु एक साथ एक बार तल के एक ओर तथा दूसरी ओर हो। तब ऐसे कम्पन को बेगिंग कहते हैं। धन चिन्ह से अंकित परमाणु साथ–साथ, एक बार तल के एक ओर दूसरी बार तल के दूसरी ओर आते हैं।

किसी यौगिक के अवरक्त स्पेक्ट्रमिकी में स्पेक्ट्रम प्राप्त होने पर विभिन्न बैंड यौगिक में उपस्थित आबंधों और प्रकार्यात्मक समूहों पर निर्भर करते हैं। प्रत्येक आबंध और समूह की विशिष्ट अवशोषण आवृति होती है जिसके अनुसार वह उस अभिलाक्षणिक आवृत्ति का अवशोषण आवृति, अणु में उपस्थित अन्य कारकों से प्रभावित होती है।

कार्बोनिल समूह की अवशोषण आवृति 1710 सेमी$^{-1}$ होता है। यदि समूह के निकट द्विआबंध हो तो यह घटकर 1680 सेमी$^{-1}$ हो जाती है। 1250 सेमी$^{-1}$ आगे का क्षेत्र सम्पूर्ण अणु का अभिलाक्षणिक होता है। इस क्षेत्र को फिंगर प्रिंट क्षेत्र कहते हैं। स्पेक्ट्रम के उच्च आवृति वाले क्षेत्र से प्रारंभ करना चाहिए फिंगर प्रिंट क्षेत्र का उपयोग पुष्टि के लिए किया जाना चाहिए। स्पेक्ट्रम में क्षेत्र विशेष में अवशोषण बैंड की उपस्थित महत्वपूर्ण सूचना देती है।

अवरक्त स्पेक्ट्रम के अनुप्रयोग :

1. प्रकार्यात्मक समूहों की पहचान – यौगिक के अवरक्त स्पेक्ट्रम में विभिन्न शिखर प्राप्त होते हैं। ये शिखर विशिष्ट प्रकार्यात्मक समूह और आबंधों को प्रदर्शित करते हैं। अणु में उपस्थित अन्य कारक, आवृति को प्रभावित करते हैं। जैसे कार्बोनिल समूह की अवशोषण आवृति 1710 सेमी$^{-1}$ पर होती है। यदि निकट में द्विआबंध तो आवृति घट कर 1680 सेमी$^{-1}$ रह जाती है।

2. **यौगिक की पहचान और संरचना की व्याख्या**– स्पेक्ट्रम में निश्चित आवृति पर शिखर आते हैं। वे समूहों की उपस्थित को दर्शाते हैं। फिंगर प्रिंट क्षेत्र में शिखर, समूहों के ततन ओर बंकन कम्पनों के कारण प्राप्त होते हैं। यह क्षेत्र अणु का अभिलाक्षणिक होता है।

3. **अणु की आकृति और सममिति ज्ञात करना**– अवरक्त स्पेक्ट्रम से किसी यौगिक के अणु की आकृति तथा सममिति ज्ञात कर सकते हैं। अणु का स्पेक्ट्रम दो बैंड देता है तो आकृति रेखीय (linear) और यदि स्पेक्ट्रम में तीन बैंड हो तो आकृति मुडी हुई (bent) होगी। कार्बनडाईआक्साइड के स्पेक्ट्रम में दो बैंड आते हैं अतः कार्बनडाई आक्साइड की आकृति रेखीय होती है। जब कि नाइट्रोजन डाई आक्साइड के स्पेक्ट्रम में तीन बैंड प्राप्त होते है। इसलिए नाइट्रोजन डाई आक्साइड की आकृति मुडी हुई होती है।

4. **जल की उपस्थित ज्ञात करना**– यदि किसी यौगिक में जालक जल (lattice Water) उपस्थित हो। तो स्पेक्ट्रम में तीन बैंड, भिन्न आवृत्तियों पर प्राप्त होते हैं। ये बैंड 3600–3200 सेमी.$^{-1}$, 1650 सेमी$^{-1}$, 600–300 सेमी$^{-1}$, आवृत पर प्राप्त होते हैं यदि जल धत्विक परमाणु से उपसहसंयोजित रहता है तो एक और बैंड 880–650 सेमी$^{-1}$ पर प्राप्त होता है।

○○○

5

अंडों की गुणवत्ता एवं रख–रखाव की विधियाँ

आनंद लक्ष्मी एन एवं रामकृष्ण महापात्रा

अंडों का उत्पादन और व्यापार, किसी भी देश के आदमनी के लिए महत्वपूर्ण रहा है। अंडों की गुणवत्ता का विशेष ध्यान रखा जाता है। अंडों के विभिन्न अवयवों की गुणवत्ता, उद्योग की आर्थिक स्थिति को स्थिर बनाए रखने में सहायक सिद्ध हुआ हैं। अगर गुणवत्ता पर, ध्यान न दिया जाए तो अंडे के व्यापारियों को भी नुकसान हो सकता है। कुछ देशों की ही नहीं बल्कि देश के आर्थिक स्थिति अंडों के व्यापार पर निर्भर करती है। अंडों के अंदर के पदार्थों या द्रव्यों के बनने के समय, अंडों के शैल (खोल) के निर्माण के समय, अन्य किसी भी स्थिति में, अंडे की गुणवत्ता प्रभावित हो सकती है। अंडे की शैल का आकार और बनावट अनेक कारकों पर निर्भर करती है। अंडा कितने समय तक पक्षी के गर्भाशय में रहता है, वह दिन के किस समय पर अंडा देता है, इस पर भी निर्भर करता है।

अंडों के शैल की गुणवत्ता का मापन अनेक प्रकार से किया जा सकता है। यह प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष ढंग से किया जा सकता है। प्रत्यक्ष विधि के अंतर्गत शैल को तोड़ने की शक्ति से पता लगाया जा सकता है। अप्रत्यक्ष विधि के अंतर्गत शैल की घनता या मोटाई, आपेक्षित भार, शैल के भार के माप से शैल की गुणवत्ता का पता लगाया जा सकता है। इस तरह के माप से यांत्रिक और भौतिक लक्षणों का पता चलता है।

वाणिज्यिक परिचालनों के अंतर्गत, अंडों को लैम्प या मोम के प्रकाश के नीचे परखा जाता है, जिससे यह पता लगाया जा सकता है कि शैल में कही दरार या दोष तो नहीं है। वाणिज्यक स्तर पर ऐसे यंत्र हैं, जिससे कि अंडों की गुणवत्ता का विश्लेषण किया जा सकता है। पूर्ण अंडे के आपेक्षिक भार को मापने के लिए अंडों को अलग–अलग आपेक्षिक भार के लवण घोल में डुबा दिया जाता है, और यह देखा जाता है कि किस घोल की सांद्रता के अंतर्गत अंडे तैरते है। किंतु शैल की गुणवत्ता का मापन इस विधि दवारा करना संदेहास्पद है। इस तरह हम केवल, अंडों के परिमाण और शैल की मात्रा के संबंध को ज्ञात कर सकते हैं।

390 HRD / 2018—8

शैल के रंग को हम अपने आँखों से परख सकते है। प्रकाश को अंडों पर केंद्रित करके, उसके प्रकाश के परिवर्तन से भी रंग की घनता को मापा जा सकता है। यह विधि, नियंत्रित परिस्थितियों के अंदर अपनाई जानी चाहिए। अंडों का भार, वजन माप उपकरण दवारा भी ज्ञात किया जा सकता है।

अंडे के शैल को तोड़ने की शक्ति का माप, एक ऐसे उपकरण दवारा किया जा सकता है, जिससे शैल के टूटने अथवा दरार पड़ने तक की शक्ति को मापा जा सकता है। यह विधि नियंत्रित परिस्थितियों के अंतर्गत ही प्रयोग की जानी चाहिए। इस विधि द्वारा यह पता लगाया जाता है कि अंडे के शैल को तोड़ने के लिए कम से कम कितनी शक्ति का उपयोग होता है। इस शक्ति को मापा जा सकता है। शैल की घनता का शैल की मजबूती से सीधा संबंध है। शैल का भार, अंडों के तोड़ने के उपरांत, प्राप्त किए शैल को धोकर, सुखाकर, शैल के भार को मापा जा सकता है। शैल भार को अंडे के भार के प्रतिशत के रूप में व्यक्त किया जाता है।

शैल की घनता को उपयुक्त यंत्र या उपकरण दवारा भी मापा जा सकता है। कुछ प्रयोगशालाओं में अंडों के शैल की क्रमवीक्षण इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी दवारा भी जांच की जा सकती है। शैल की रचना से भी उसके गुणवत्ता का पता चलता है।

अंडे के शैल के गुणवत्ता को प्रभावित करने वाले अनेक कारक हैं।

आनुवंशिक रूप से जनित विभिन्न प्रकार की मुर्गियों से उत्पादित अंडे की शैल की गुणवत्ता, अंडों के आकार और उनके उत्पादन में विभिन्नता पाई जाती है। आधुनिक वाणिज्यक पक्षियों और पुराने नस्लों के पक्षियों के अंडे की गुणवत्ता की जब तुलना होती है, तो आधुनिक पक्षियों के अंडों के तत्वों में उत्तमता पाई जाती है। आनुवंशिक तत्वों पर जब मुर्गियों का चयन होता है, तो यह ध्यान रखना चाहिए कि अंडे की एक प्रकार की विशेषता, दूसरे तत्वों की विशेषता को कम न करें।

शैल की गुणवत्ता मुर्गी की आयु से भी प्रभावित होती है। शैल की गुणवत्ता उसके निर्माण में सहायक होने वाली एंजाइम पर भी निर्भर करती है, जो कि शरीर में कैल्सियम के संतुलन को बनाए रखता है। शोध कार्यो से यह भी पता चला है कि, अगर अंडे का माप कम होता है तो, शैल की गुणवत्ता में वृद्धि होती है। मुर्गी के खाने में कुछ ऐसी चीजे मिलाने पर देखा गया है, कि पक्षी की आयु ज्यादा होने पर भी शैल की गुणवत्ता बनी रहती है।

मुर्गियों के खादयों पदार्थों में कैल्शियम संतुलित मात्रा में होना चाहिए, जिससे कि इसका शैल के बनाने में सही ढंग से उपयोग हो सकता है। मुर्गी के खादय में कैल्शियम और फास्फोरस का अनुपात ठीक मात्रा में होना चाहिए। फास्फोरस की मात्रा ज्यादा होने से, कैल्शियम कि अवशोषण की मात्रा कम हो जाती है और इसका असर शैल के गुणवत्ता पर पड़ता है। मुर्गी के खाने में कैल्शियम की मात्रा प्रथम अंडे के निष्कासन के समय ज्यादा होना चाहिए, किंतु ज्यादा मात्रा में ग्रहण करने से भी

इसका असर विपरीत हो सकता है। मुर्गी के खाने में विटामिन 'ए'–ई' की संतुलित मात्रा भी होनी चाहिए, जिससे कि पौष्टिकता बनी रहे।

आंत में खाद्य पदार्थों से कैल्शियम का अवशोषण होता हैं जब शैल ग्रन्थि निष्क्रिय रहती है तो कैल्शियम का अवशोषण 40% तक होता है, लेकिन जब सक्रिय होती है तो अवशोषण 72% तक पहुँच जाता है। मुर्गियों के अंडे देने के प्रथम चरण के पहले उनके शरीर या खून में कैल्सियम की मात्रा ज्यादा होनी चाहिए।

जल का भी अंडे की गुणवत्ता को कायम रखने में महत्वपूर्ण योगदान हैं पानी स्वच्छ रहना चाहिए। पानी में अगर विद्युतअपघट्य (इलेक्ट्रोलाईट) की मात्रा ज्यादा हो तो, इसका असर विपरीत पड़ता है। पीने के पानी का तापमान भी मौसम के अनुकूल होना चाहिए। गर्मियों में अगर मुर्गियों को ठंडा पानी दिया गया तो इसका सही प्रभाव अंडों के उत्पादन और गुणवत्ता पर होता है। शोध कार्यों से यह पता चला है कि कुछ एंजाइमों को पक्षी के खाने में मिलाने से अंडे के शैल की गुणवत्ता बढ़ती है। शोध कार्यों से यह भी पता चला है कि एंजाइमों के संपूरक से, शैल का भूरा रंग फीका पड जाता है। हमें किसी भी पदार्थों का खाने में संपूरक मिलाने से पहले उसके नकारात्मक परिणामों के बारे में भी सोचना चाहिए। फैटेस एक ऐसा एंजाइम है, जिसको फीड में मिलाने पर शैल की गुणवत्ता बढ़ती है। खाद्य पदार्थों में कवक संबंधी विषाक्त पदार्थों की मिलावट से भी अंडों के उत्पादन और उसके शैल की गुणवत्ता प्रभावित होती है। यह जिनसे अंडों के उत्पादन पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

जिंक और मेंगनीज़ जैसे लवण पदार्थ भी शैल निर्माण में सहायक सिद्ध होते हैं। इनकी जरूरत बहुत कम मात्रा में होती है। कुछ शोध कार्यों से यह भी पता चला है कि, इनकी उपलब्धता किस प्रकार होगी, यह भी अंडे की गुणवत्ता को निर्धारित करते है।

अंडे के अंदरूनी भाग की गुणवत्ता उसकी ज़र्दी और सफेद भाग पर निर्भर करती है। ज़र्दी की गुणवत्ता उसके रंग और श्वेत परत की क्षमता द्वारा परखी जाती है। अगर श्वेत परत क्षीण है, तो ज़र्दी के शिथिल होने की संभावना ज्यादा होती है। ज़र्दी का रंग 'Roche Scale' पर नापा जाता है। सफ़ेद भाग एल्बूमिन के मुख्य प्रोटीन ओवोम्युसिन और ओवोएल्युमिन प्रोटीन है। एल्बूमिन का pH और उसकी विशिष्टता, पक्षी के खाने के पूरक पर निर्भर करती है।

इसकी गुणवत्ता, खाने में लाइसिन (एमिनो अम्ल), एस्कॉर्बिक अम्ल और विटामिन ई के पूरक से होती है। नीम संबंधी कारकों के पूरक से एल्बूमिन की गुणवत्ता कम हो जाती है।

IBV रोग के कारण भी एल्बूमिन की विशेषता कम हो जाती है। इस कारण एल्बूमिन के बनने में उपयोग होने वाले प्रोटीन की कमी हो जाती है।

अंडे के शैल का रंग, तापमान संतुलन और उसकी संरचनात्मक के स्थायित्व में है। एल्बूमिन का भार, एल्बूमिन की ऊंचाई, ज़र्दी की ऊंचाई, ज़र्दी की चौड़ाई, ज़र्दी का भार, इन सब कारकों के मापन के द्वारा हम अंडे की गुणवत्ता को परख सकते हैं।

खाद्य पदार्थ ग्रहण करने की क्षमता कम होने के कारण भी हो सकता है। अगर पक्षियों की संख्या का घनत्व ज्यादा हो तो भी, इसका विपरीत असर अंडों के उत्पादन और उसके गुणवत्ता पर पड़ता है। पक्षियों का मानव स्पर्श, अगर ज्यादा समय तक हो तो भी इसका अंडों के शैल के निर्माण पर पड़ता है, और प्रायः शैल कमजोर बनते हैं।

बाहरी तापमान अधिक होने पर, अंडों का आकार छोटा हो जाता है और शैल ठीक तरह से नहीं बन पाते। यह प्रायः शारीरिक प्रक्रियाओं के कारण होता है। इन प्रक्रियाओं में गड़बड़ी के कारण खाना ग्रहण करने की क्षमता कम हो जाती है, कैल्शियम की उपलब्धता कम हो जाती है और इसका असर सीधे अंडे की संरचना पर पड़ता है। इसलिए गर्मी के दिनों में सोडियम बाई कार्बोनेट की उपलब्धता कराना अनिवार्य है। इस तरह शैल बेहतर बनता है। उच्च तापमान के समय पक्षी के खाने में कैल्शियम को, मोटे कण के रूप में देना चाहिए। इससे शैल की गुणवत्ता बढ़ती है। गर्मी के मौसम में ठंडे पानी के साथ–साथ विद्युतअपघट्य सोडियम बाईकार्बोनेट देना चाहिए। इन द्रव्यों को पानी में मिलाकर पक्षियों को देने पर पक्षियों को गर्मी से राहत मिलती है।

कुछ रोग मुर्गियों को प्रभावित करते है, जिससे अंडों के उत्पादन की क्षमता, उनके शैल की गुणवत्ता और प्रजनन नली को संक्रमित करने वाले सूक्ष्म जीवों के कारण अंडों के उत्पादन और उनके गुणवत्ता को कम करते है। न्यूकासल संक्रमण, एवियन इफ़्लुयंजा, ऐसे संक्रमण करने वाले रोग हैं,

अंडे की गुणवत्ता (ताज़ा या बासी)

1. एक ताज़े अंडे में ज़र्दी छोटी और बीच में पाई जाती है। इसमें एयर शैल छोटा होता है और यह कुछ अंत की दिशा में पाया जाता है।

2. ताज़ा अंडे को पानी के भगोने में डुबाए तो, यह नीचे जाकर तह पर बैठ जाता है और बासी अंडा तैरता है।

3. निर्बल शैल और शैल में दरारों के पड़ने पर भी अंडा पानी में तैरता है।

4. ताज़े अंडे में जर्दी छोटी, गोलाकार और चिपचिपे द्रव्य की तरह दिखती है। सफ़ेद अंश ठोस पदार्थ की तरह रहता है, यह आसानी से फैलता नहीं है।

जर्दी का रंग जेन्थोफिल वर्णक से प्राप्त होता है जो खाद्य पदार्थ से मिलता है। इसके रंग में सामान्य या कृत्रिम ढंग से बदलाव लाया जा सकता है। जिन द्रव्यों से रंग में अंतर लाया जाता है, उन्हें सही मात्रा में देना आवश्यक है। सभी जिगर कि क्रिया भी सही ढंग से काम करनी चाहिए, जो कि

जर्दी के बनने में सहायक सिद्ध होती है। कुछ दवाइयों के सेवन से जैसे निकारबाजिन, फीनोथायोजीन इत्यादि जर्दी के गुणवत्ता को कम करते हैं। यह असर दवाई के सही तरह के उपयोग से कम होता है। जब अंडे का अंदरूनी तापमान सामान्य से अधिक होता है, तो एल्बूमिन या सफ़ेद भाग और श्वेत परत पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

अंडों के ज्यादा समय तक भंडारण करने से, उसके शैल से कार्बनडाईऑक्साइड निकल जाती है, जिससे की अंडे के तत्वों का pH बढ़ जाता है और एल्बूमिन पानी जैसे हो जाता है। यह अवस्था गर्मी के दिनों में या उच्च तापमान के समय पाई जाती है। अंडों का भंडारण 7–13 डिग्री सेंटीग्रेड तक होना चाहिए।

ब्लड स्पॉट और मीट स्पॉट भी जर्दी और एल्बूमिन से संबंधित लक्षण है, जो कि उसके गुणवत्ता को कम करते है।

अंडे के एल्बूमिन में लाइसोजाइम नामक प्रोटीन उपलब्ध है जो अंडे की सूक्ष्म जीवों से रक्षा करता है। ओवोट्रांसफेरिन नामक एक अन्य प्रोटीन भी उपलब्ध है, जो कि अंडे को सड़ने और बाहरी सूक्ष्म जीवों से रक्षा प्रदान करता है। संग्रह में अच्छे प्रबंधन, सावधानी बरतने से, यह सारे कारक अंडे के गुणवत्ता बनाए रखने में सहायक होते है।

संदर्भ

1. जुजिएट और राबर्ट्स, 2004, ज. आफ सएंस, 41:161–177

2. बुत्चेर जी डी और मैल्स आर. डी., 2003, कोंसेप्ट्स औफ येग शेल्ल क्वलीटी, युनीवर्सिटी औफ फ्लोरिडा।

3. कौट्स जी. ये., 1990. ये कवालीटी हॅईअंडबक, क्वींसस्लैंड डिपारटमेंट औफ इंडस्ट्रीस, आस्ट्रिया।

4. जोन डी. आर., 2006 कंसेर्विंग येंड मनिटओरिंग येग शेल क्वालिटी. प्रोसिडॅइंग्स आफ दा 18th येनुअल आस्ट्रएलिअन पौल्ट्री सैंस सिम्पोसियम प प. 157–165

5. जुएर्स के. 1990, मैकोटाक्सइंस येंड देर येफ्फेक्ट आन पोल्ट्री प्रोडक्शन. सीरीस ये 7,195–202

6. मैल्स आर. डी., 2001, ट्रएस मिनेरल्स येंड येविअन येम्ब्र्यो डेवेलोपमेंट क्लिनेसिया येनिमल ब्रसिलेरिआ, 2 : 1–10

○○○

390 HRD / 2018—9

6

वैदिक काल में मृदा की रूप रेखा तथा उसका आधुनिक परिप्रेक्ष्य में महत्व

डॉ. वेंकटेश भारद्वाज

वैसे तो हमारे प्राचीन साहित्य, जिनमें वेद, वेदांग और उपवेद, आरण्यक, उपनिषद, दर्शन, पुराण और शास्त्र आदि शामिल हैं, कृषि विज्ञान के अपरिमित ज्ञान से परिपूर्ण हैं। यदि इनके कृषि ज्ञान को एक जगह इकट्ठा किया जाए, तो अनेक ग्रंथों की रचना हो सकती है। साथ ही इस प्राचीन ज्ञान को आधुनिक कृषि के संदर्भ में परखा और काम में लाया जा सकता है।

वेदों में ऋग्वेद तथा अथर्ववेद मुख्य रूप से कृषि सम्बन्धी ज्ञान प्रदान करते हैं। शतपथ और ऐतरेय ब्राह्मणों में भी कृषि विद्या के बारे में बहुत लिखा गया है। बहुत सारी संहिताएं भी कृषि ज्ञान से ओत–प्रोत हैं। शुक्ल यजुर्वेद की वाजसनेयी संहिता में विभिन्न फसलों के उगाने की विस्तृत चर्चा है। तेत्तिरीय संहिता में खेती के मौसमों का वर्णन है कि कौन सी फसलें किस ऋतु में बोई जाएं और किस ऋतु में काटी जाएं? महर्षि पराशर रचित पराशर संहिता, कृषि पराशर और कृषि संग्रह ग्रंथों में भी कृषि के बारे में बहुत कुछ लिखा हुआ है। कृषि संग्रह में 'गोमय कूटोद्धार' का विशेष उल्लेख है। जिसके अन्तर्गत गोबर के ढेर का क्या उपयोग किया जाए, बताया गया है। आचार्य बराहमिहिर की 'वृहतसंहिता' में कृषि सम्बन्धी विभिन्न मंत्रों, तंत्रों तथा यंत्रों का विशद वर्णन किया गया है।

महर्षि कश्यप का 'वृक्षायुर्वेद' आचार्य शार्ङ–धर की 'सुभाषित शार्ङ–धर' में उपवन विनोद नामक अध्याय, महाभारत में 'भृगु–भारद्वाज कथोपकथन' इत्यादि में भी कृषि सम्बन्धी ज्ञान दिया गया है। इसके अतिरिक्त कौटिल्य विरचित 'अर्थशास्त्र' के अधिकरण 2, अध्याय 24 का नाम 'सीताध्यक्ष' है। इस अध्याय में खेती का विस्तृत वर्णन है।

इस प्रकार इन समस्त ग्रंथों के कृषि सम्बन्धी आख्यानों को सार रूप में भी प्रस्तुत किया जाए, तो यह लेख बड़ा हो जाएगा। अतः वेदों, मुख्यतः

ऋग्वेद तथा अर्थववेद, में से ही कुछ ऋचाएं ही तत्कालीन कृषि ज्ञान की जानकारी हेतु यहां दी जा रही हैं। मिट्टी और भूमि के इस सामान्य अंतर में हम लोग प्रायः भेद नहीं करते हैं। इसी प्रकार वेदों में भी मिट्टी और भूमि में स्पष्ट अंतर नहीं दिखाया गया है। परन्तु वैदिक साहित्य में भूमि का विस्तृत वर्णन मिलता है।

सामान्य रूप से "मिट्टी पृथ्वी की ऊपरी सतह पर खनिजों तथा कार्बनिक पदार्थ का असंहत मिश्रण हैं, जो पौधों की वृद्धि का माध्यम है। इसका निर्माण विभिन्न स्थलाकृतियों पर स्थित जनक द्रव्य पर जलवायु और जीवों की संयुक्त क्रियाओं का दीर्घकालिक परिणाम है।"

आज भी जब मिट्टियों का अध्ययन करते हैं, तो सबसे पहले उसका रंग देखते हैं। हम कहते हैं कि उत्तर भारत के मैदानों की मिट्टियाँ लेटी या धूसर रंग की है। मध्य–भारत की कपास बाली मिट्टिया काले रंग की हैं और कर्नाटक में लाल मिट्टियाँ पाई जाती हैं।

वेदों में भी मिट्टियों को सबसे पहले रंग के आधार पर ही इंगित किया गया है। अथर्ववेद की ऋचा संख्या 12/1/11 बड़े ही स्पष्ट रूप से मिट्टी के रंग की वर्णन करती है। यथाः गिरयस्ते पर्वता हिमवन्तोऽरण्यं ते पृथिवी स्योनमस्तु। वभ्रुं कृष्णां रोहिणीं विश्वरूपां ध्रुवां भूमि पृथिवीमिन्द्र गुप्ताम्। अजीतोऽहतो अक्षतोऽध्यष्ठसं पृथिवीमहिम्।। अर्थात् हे पृथ्वी तुम्हारी पहाड़ियां, हिमयुक्त पर्वत तथा तुम्हारे वन हमारे सुखकर होवें। किसी के द्वारा जीता न जाने वाला, किसी के क्षत न होने वाला मैं भूरी, काली, लाल (रोहिणी), अनेक रूपों वाली और स्थिर (ध्रव), इन्द्र से सुरक्षित भूमियों पर स्थिर होऊँ।

मिट्टी का गठनः

मृदा सर्वेक्षण में मिट्टी का रंग देख लेने के बाद उसे छू कर, उंगलियों और अंगूठे के बीच रगड़ कर उसके गठन का अनुमान लगाया जाता है कि मिट्टी बलुई है, दुमट अथवा मटियार हैं। वेदों में मिट्टी के इस गुण का वर्णन किया गया है। इस संदर्भ में अर्थववेद के ऋचा 11/7/21 को यहां उद्धृत किया जा रहा हैः शर्कराः सिकता अश्मान ओषधयों वीरूधकतृणा। अभ्राणि विद्यतो वर्षमुच्छिष्टे संश्रिताश्रिता।। अर्थात् कंकरीली या किरकिरी, बलुही, पथरीली, औषधियां, लतायें, तृण इत्यादि, मेघ, बिजलिया, वर्षा सभी परमेश्वर का आश्रय लेकर अपनी सत्ता बनाए हुए हैं।

मृदा वर्गीकरणः

कृषि एवं अन्य कार्यों हेतु मिट्टी का वर्गीकरण प्राचीन काल से ही होता रहा है। पहले हम रंग के आधार पर (काली, पीली या भूरी) गठन के आधार पर (बारीक मिट्टी, मोटी मिट्टी, बलुई मिट्टी या चिकनी मिट्टी) तथा फसल को उपजाने के आधार पर (धान की मिट्टी या कपास की मिट्टी आदि) मिट्टी का वर्गीकरण करते थे। आजकल भी लगभग इन्हीं सब तथ्यों पर मिट्टी का वर्गीकरण किया जाता है। अथर्ववेद की ऋचा (11/7/4) में नौ प्रकार की भूमियों (मिट्टियों) का वर्णन किया गया है।

आजकल 'मृदा वर्गीकरण' विषय का एच. डी. बुओल की पुस्तक से पढ़ाया जाता है। आप अमेरिकी विद्वान हैं। इस पुस्तक में एक अध्याय 'वर्टीसौल्स' मृदा गण (Soil order) पर है। वर्टीसौल्स का सामान्य अर्थ है 'मृतिका का उलटना' (inversion) अर्थात् मृतिका (clay), मिट्टी की ऊपरी सतह से दरारों में होकर नीचे चली गई। भारत की कपास की काली मिट्टियां 'वर्टीसौल्स' गुण का एक अच्छा उदाहरण है। डॉ. बुओल की पुस्तक में 'वर्टीसौल्स' के बनने के लिए एक गिलहरी को मिट्टी खोदकर दरारों में गिराते दिखाया गया है। लता–वृक्षों पर रहने वाली गिलहरी को मैंने आजतक मिट्टी खोदते नहीं देखा है। शायद किसी ने भी नहीं देखा होगा।

अब मृतिका के उलटने अर्थात् ऊपर से नीचे करने की बात यदि वैदिक ऋचा से कही जाए तो ज्यादा ठीक रहेगी। अथर्ववेद की 4/15/12वीं ऋचा का अंश देखिए– 'वदन्तु पृश्निवाहवों मण्डूका इरिणान्तु' अर्थात् चितकबरे रंग के मेंढक 'झरिणों' में से बोले। इरिण का अर्थ होता है, भूविवर अर्थात् भूमि के दरारे और छिद्र। जैसा कि सभी जानते हैं कि अपनी ग्रीष्म एवं शीत सुप्तावस्था में मेंढक जमीन भी दरारों में छुप जाते हैं और वर्षा के आगमन के समय उनमें से बाहर आ जाते हैं। अतः गिलहरी की अपेक्षा मेंढकों के आवागमन से क्ले (मृतिका) के ऊपर से नीचे संचलन की संभावना कहीं ज्यादा है। अतः गिलहरी की अपेक्षा मेंढकों तथा दरारों में रहने वाले जन्तुओं का उदाहरण तो अधिक है।

मृदा जीवः

भूमि (मिट्टी) में अनेके प्रकार के जीव पाए जाते हैं। इनमें से कुछ हम अपनी आँखों से देख सकते हैं और कुछ इतने छोटे होते हैं कि उन्हें देखने को सूक्ष्मदर्शी की सहायता लेनी होती है। परन्तु हमारे वैदिक ऋषियों एवं मुनियों की पैनी दृष्टि ने भूमि में सभी छोटे–बड़े जीवों को देख कर अथर्ववेद की ऋचा संख्या 12/1/46 में उनका बडा ही सटीक वर्णन किया है। यस्ते सर्पो वृश्चिकस्तृष्टदंश्मा हेमन्त जब्धे भृमलो गुहाशये। क्रिमिर्जिन्वत् पृथिवि यद्यदेजति प्रावषि वत्रः सर्पोन्मोष सृपद याच्छिवं तेन नोमृड। अर्थात् सर्प, वृश्चिक, तीखे काटने वाले, भौरें आदि कीड़े–मकोड़े, रेंगने वाले और इच्छानुसार विचरण करने वाले सभी जीव पृथ्वी में निवास करते है।

मृदा उर्वरताः

किसी भी फसल की अच्छी और अधिक हेतु मिट्टी का उर्वर होना जरूरी है। वेदों में भी मृदा उर्वरता पर विशेष ध्यान दिया गया है। ऋग्वेद की ऋचा (1/127/6) में ऊसर मिट्टी को 'आर्त्तना' तथा उपजाऊ मिट्टी को 'उर्वरा' कहा गया है। खाद को शकृत या करीष कहते थे। अर्थववेद की ये दो ऋचाएं मृदा उर्वरता पर प्रकाश डालने को प्रर्याप्त है। संजग्माना अविभ्युषीरस्मिन् गोष्ठे करीषिणीः विभ्रतीसायं मध्वनमीवा उपेतन। (31/14/3) तथा करीषिणी फलवतीं स्वधामिरां चनो गृहे। औदुम्बरस्य तेजस्मा धाता पुष्टि दधातु मे।। (19/31/3) उस समय गायों के सूखें गोबर वाली या सूखे गोबर के

खाद वाली उपजाऊ भूमि का 'क्षेत्र' कहा जाता था। उसके साथ की परती या चारागाह भूमि को 'खिल' कहते थे।

मिट्टी के बारे में अपने प्राचीन ज्ञान को इस संक्षिप्त लेख में समेटने का प्रयास किया गया है। आज हम सभी संस्कृति एवं विकास बनाम पर्यावरण प्रदूषण की सांस्कृतिक अवस्था से गुजर रहे है। यदि प्राचीन विकास को सही मान लिया जाए तो उस समय प्रदूषण नहीं था। हालांकि ऊर्जा का विस्तृत एवं संतुलित प्रवाह उस काल में भी था। तत्कालीन जैव ऊर्जा (हाथी–घोडे, गाय–बैल) आद से गोबर की खाद तथा समाधि खाद (मृत पशुओं से) आदि मिलती थी, परन्तु आज पेट्रोलियम ऊर्जा से प्रदूषण मिल रहा है। अतः समय आ गया है कि प्रदूषण रहित विकास हेतु यदि कुछ ज्ञान हमें अपने प्राचीन साहित्य से मिल जाता है तो उसका उपयोग अवश्य करें, तभी हम अपनी संस्कृति एवं विकास जीवंतता एवं निरंतरता बनाए रखने में सफल होंगे।

○○○

390 HRD / 2018—10

विभाजित किया, प्रत्येक सेट में 24 पौधे थे। प्रत्येक समुच्चय का 8 उप समुच्चयो में बांटा गया, प्रत्येक उपसमुच्चय में 3 पौधे थे। प्रत्येक समुच्चय के चार उपसमुच्चयों को जैव–कारकों के निलंबन से छिड़काव किया गया (एक जेव–कारक/सेट) जबकि शेष 4 उपसमुच्चयों को सामान्य स्थिति में (बिना छिड़काव के) रखा गया। सभी उपसमुच्चयों को तब जैव–कारकों के अनुप्रयोग के 1, 4 और 7 दिनों के बाद फाइटोफ्थोरा इन्फैस्टैन्स चलबीजाणु निलंबन से संरोपित किया गया।

परिणाम और चर्चा:

विभिन्न जैव–कारकों की जैव–क्षमता का जब पौधों से अलग पत्ती विधि से मूल्यांकन किया गया तो परिणाम से यह पता चला कि ट्राइकाडर्मा विरिडी और उसके बाद पेनीसीलियम विरिडेकेटम पछेती अंगमारी (लेट ब्लाइट) को नियंत्रित करने में सर्वाधिक प्रभावी थे (अनट्रिटेड नियंत्रण में 9.66 cm^2 के सामने क्षति क्षेत्र क्रमशः 3.48 और 3.66 cm^2)। ट्राइकोडर्मा हर्जिएनम और माइरोथीसियम वेरुकेरिया एक दूसरे के साथ सममूल्य थे लेकिन रोग पर पर्याप्त रूप से नियंत्रण किया (क्षति क्षेत्र क्रमशः 5.93 और 5.06 cm^2)। यह प्रवृत्ति जैव–कारक अनुप्रयोग के 24, 48 और 72 घंटों (स्थापित समय) बाद प्रत्यक्ष था। जैव–कारक ट्राइकोडर्मा विरिडी और पेनीसीलियम विरिडिकेटम ने प्रारंभ से अंत तक रोग पर अधिकतम नियंत्रण किया (सारणी–1)। पत्ती सतह पर जैव–कारकों की स्थापित अवधि में प्रभाव संबंधी आंकड़े दर्शाते हैं कि जैव–कारकों की स्थापित अवधि में बढ़ोत्तरी के साथ जैव–कारकों की कार्यक्षमता धीरे–धीरे बढ़ी। जैव–कारक अनुप्रयोग के 24 घंटों बाद रिकार्ड किए जाने पर, कार्यक्षमता धीरे–धीरे बढ़ी। जैव–कारक अनुप्रयोग के 24 घंटों बाद रिकार्ड किए जाने पर, ट्राइकोडर्मा हर्जिएनम ने न्यूनतम जैव–कारक प्रभाव दिखाया (क्षति क्षेत्रा 6.10 cm^2) और जैव–कारक अनुप्रयोग के 72 घंटों बाद यह प्रभाव अधिकतम था

जब जैव–कारकों का संपूर्ण पौधों पर परीक्षण किया गया तब भी समान परिणाम प्राप्त हुए, पेनीसीलियम विरिडिकेटम और ट्राइकोडर्मा विरिडी रोग नियंत्रण में सर्वाधिक प्रभावी थे (अनट्रीटेड नियंत्रण में 90.10: के सामने क्रमशः 43.18 और 39. 63% Dl; $CD_{0.05}$ = 2.52) रहा। तथापि, विभिन्न जैव–कारकों की जैव–क्षमता, जैव कारकों की स्थापना की सभी अवधियों में समान नहीं रहीं। उदाहरण के लिए, जैव कारक अनुप्रयोग के पहले और चौथे दिन पर पेनीसीलियम विरिडिकेटम और ट्राइकोडर्मा विरिडी सर्वाधिक प्रभावी थे लेकिन एक दूसरे के साथ सममूल्य पर थे। Dl; $CD_{0.05}$ = 2.52) यद्यपि सांतवे दिन, ट्राइकोडर्मा विरिडी का जैव–कारक प्रभाव पेनीसीलियम विरिडिकेटम से अधिक था (क्रमशः 24.8 और 35.37 % Dl; $CD_{0.05}$ = 2.52)। जैव–कारकों की स्थापित अवधि का जैव–कारकों की कार्यक्षमता पर महत्वपूर्ण प्रभाव रहा (सारणी 2)। चार दिनों की स्थापित अवधि में रोग नियंत्रण अधिकतम था (एक दिन स्थापित अवधि में 60.79 % Dl के सामने 57.38 % Dl; $CD_{0.05}$ = 1.13) स्थापित अवधि बढ़ाए जाने पर उनकी जैव कार्य क्षमता में कोई महत्वपूर्ण प्रभाव दिखाई नहीं दिया ।

प्रारंभ में जैव'कारकों का उपयोग मृदा जनित पादप रोगजनक के प्रबंधन के लिए किया गया था (जगेर एवं वेलविस, 1983; बीगल एवं पापाविजास, 1985; जीस एवं कोफे, 1989; स्मिथ एवं सहयोगी, 1990; मुखेपाध्याय एवं सहयोगी, 1992)। बाद में, जैव–कारकों का उपयोग कर आलू के कई मृदा और कंद (ट्यूबर) जनित रोगों का प्रबंधन, प्रभावी ढ़ंग से किया गया है (जगेर एवं वेलविस, 1983; बीगल एवं पापाविजास, 1985; सेन, 1987; वार्टन एवं सहयोगी, 2012)। तथापि, जैव–कारकों का उपयोग कर पर्णसमूह रोगों को नियंत्रण करने संबंधी बहुत ही कम जानकारी उपलब्ध है। कुछ ही रिपोर्ट हैं जिनमें बैसिलस सबटिलिस, पाइथियम अल्टीमम, ट्राइकोडर्मा जाति, स्यूडोमोनास जाति, पेनीसीलियम जाति जैसे जैव–कारकों का मूल्याकंन किया गया है और आलू के पछेती अंगमारी (लेट ब्लाइट) रोग नियंत्रण में उपयोगी पाए गए है। (हुसैन एवं सहयोगी, 2014; पापाविजास 1985; वार्टन एवं सहयोगी, 2012)। वर्तमान अध्ययन में चार ज्ञात जैव–कारकों अर्थात् पेनीसीलियम विरिडिकेटम, ट्राइकोडर्मा हर्जिएनम, ट्राइकोडर्मा विरिडी और माइरोथीसियम वेरुकेरिया का मूल्यांकन इस दृष्टि से किया गया कि ऐसा उपयुक्त जैव–कारक पहचाना जा सके जो बाद में, आलू का पिछेता झुलसा (लेट ब्लाइट) रोग नियंत्रण के लिए उपयोग किया जा सके। परिणामों से यह बात सामने आई कि ट्राइकोडर्मा विरिडी और पेनीसीलियम विरिडीकोटम के द्वारा रोग में अधिकतम कमी देखी गई। जिंदल एवं उनके सहयोगी द्वारा भी जैव–कारक मेटाबॉलिटिज् का उपयोग कर समान परिणाम प्राप्त किए गए। सभी जैव–कारकों ने पौधों से अलग पत्ती तथा सम्पूर्ण पौधों दोनों पर पछेती अंगमारी (लेट ब्लाइट) रोग का अच्छा नियंत्रण किया। यद्यपि, जब मिट्टी के गमले में सम्पूर्ण पौधों पर उपयोग किया, पेनीसीलियम विरिडिकेटम और ट्राइकोडर्मा विरिडी ने रोग नियंत्रण अधिकतम किया। ट्राइकोडर्मा एवं पेनीसीलियम जाति का मूल्यांकन भी अन्य वैज्ञानिकों द्वारा किया गया और पौधों से अलग की गई पत्तियों/मिट्टी के गमलों में पौधों, दोनों पर पिछेता झुलसा (लेट ब्लाइट) रोग का नियंत्रण करने में प्रभावर पाए गए (गरिता एवं अन्य सहयोगी, 1998; गुप्ता एवं अन्य सहयोगी, 2004; जिंदल एवं अन्य सहयोगी, 1988; एव रॉय एवं अन्य सहयोगी, 1991)।

○○○

390 HRD / 2018—11

8

आयुर्वेद और आपका स्वास्थ्य

दिनेश चन्द्र बहुखण्डी

प्रकृति का नियम है कि प्राणी जिस मिट्टी में पैदा होता है और जहाँ रहता है, उसका शरीर उसी मिट्टी के हिसाब से चलेगा। अर्थात् मिट्टी उसके आस–पास उपस्थित जीवों के लिए उसी प्रकार का खाद्य पदार्थ उत्पन्न करती है और वही उनके लिए उपयुक्त होता है। भारत में पैदा हुए तो हमारे लिये वही खाद्य पदार्थ उपयोगी होंगे जोकि भारत की मिट्टी पैदा करेगी।

अमेरिका व इंग्लैंड में बहुत सर्दी पड़ती है, वहाँ वर्ष में नौ महीने सूरज के दर्शन नहीं होते वहाँ सर्दी इतनी पड़ती है कि तापमान –40 डिग्री तक चला जाता है फिर बर्फ इतनी पड़ती है कि घरों के दरवाजे भी बन्द हो जाते हैं, घरों के आगे बर्फ की ढेर लग जाती है। वहाँ सिर्फ तीन महीने ही भगवान सूर्य नारायण के दर्शन होते हैं; वहाँ इतनी ठण्ड में अनाज भी नहीं होता सिर्फ थोड़ा सा गेहूँ ही होता है। अब कल्पना कीजिए कि इतनी ठण्ड में वे खाना भी नही बना पाते होंगे। वे आटे को खमीर करके डबलरोटी, पिज्जा, बर्गर इत्यादि बनाकर खाते हैं। वहाँ सब्जी भी नहीं होती, अतः वहाँ बाहर से पैक डिब्बों में सब्जी जाती है और वे इसमें केमिकल नमक बुरक कर खाते हैं।

इसके विपरीत हमारे देश का मौसम सदाबहार है हमारे देश में बारह महीने सूरज निकलता है, यहाँ छः ऋतुएँ होती हैं बसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त व शिशिर इन्हीं ऋतुओं के आधार पर हमारे देश में अनेक फसलें होती है। जैसे गेहूँ, चावल, ज्वार, बाजरा, मक्का, अनेक तिलहन, दाले आदि। यहाँ सब्जियाँ, सूखे मेंवे, फल बहुत मात्रा में होते हैं। इसलिए हमारे देश में हलवा, पूड़ी, रोटी, पराठा, चावल, दाल सब्जी इत्यादि बनाई जाती है; और यहाँ के रहने वालों के लिए उचित है।

आज से 60–70 वर्ष पूर्व भारत में लोग स्वस्थ और निरोग होते थे क्योंकि हम लोग उसी खाद्य पदार्थ का उपयोग करते थे जो हमारे पूर्वज हमें बता गए थे। हमारा देश कृषि प्रधान है, इसलिए यहाँ की 70% जनता गाँव में रहती है, लोगों का कहना था मोटा खाओ, मोटा पहनो, उस समय हमारे देश में गाय, भैंस, बैल, बकरी, ऊँट, भेड़ आज की अपेक्षा अधिक पाले जाते थे और लोग

खूब देशी घी व दूध–दही का उपयोग करते थे और किसी घर में दूध नहीं था तो शुद्ध तेल का उपयोग करते थे, उस समय समुद्री नमक (डाले) के रूप में प्रयोग होता था, छिलके वाले दालें प्रयोग की जाती थी, चीनी की जगह गुड़ का प्रयोग किया जाता था। उस समय हार्ट अटैक, कोलेस्ट्रॉल, मधुमेह, थाइराइड जैसी बीमारियाँ भी नहीं होती थी। उस समय यदि कोई बीमार होता था तो आयुर्वेद की शरण में जाता था, परंतु आज हम विदेशी खान–पान व रहन–सहन को अपना रहे हैं। बीमार पड़ने पर हम एलोपैथी की शरण में जा रहे हैं, जो कि देश काल के अनुसार नहीं है। यदि आज भी हम स्वस्थ रहना चाहते हैं तो हमें अपने देश के खान–पान पर आना होगा, और विदेशी खाद्य पदार्थों को त्यागना होगा। **संसार में 100 से अधिक चिकित्सा प्रणलियाँ है; सबका कहना है कि आप बीमार पड़ों तो हम आपका इलाज करेंगे, परंतु आयुर्वेद ही एक ऐसी चिकित्सा प्रणाली है जो कहती है कि कुछ इस प्रकार के नियम अपनाओ, ताकि आप बीमार ही न पड़ों।**

हमारे महान आयुर्वेदाचार्य चरक, पाराशर, वांगभट्ट के सिद्धांतों को आज भी हमें अपनाना होगा। उनके अनुसार कुछ इस प्रकार के नियम अपनाओं की जीवन में बीमार ही न पड़ों। उन्होंने भारत में कई वर्षों तक शोध कार्य किए और फिर खाने–पानी व उठने–बैठने के नियम सुझाए, जोकि आज भी उतने ही उचित हैं; जितने कि आज से साढ़े तीन हजार वर्ष पूर्व थे जब आयुर्वेद की पुस्तकें चरक संहिता अथवा अष्टांग हृदयम् व अष्टांग संग्रह लिखे गये थे, आज का विज्ञान भी यह मानने को बाध्य है कि वे सब नियम वैज्ञानिक तथ्यों पर आधारित हैं। इसी आधार पर मैं कुछ आयुर्वेद द्वारा सुझाये गये नियमों का उल्लेख कर रहा हूँ जिसे ऋषि वांगभट्ट जी ने अपनी पुस्तक अष्टांग हृदयम् में लिखा है, वे इस प्रकार हैः–

पानी पीने के नियमः–

1. सवेरे उठते ही बिना कुल्ला किए गुनगुना पानी या तांबे के बर्तन में रखा हुआ पानी घूँट–घूँट कर मुँह में खुब घुमा कर पिए, इससे आपके मुँह में स्थित लार जो कि रात भर से बन रही है पेट में जाती है यह लार औषधियुक्त है, इसे बनाने के लिए परमात्मा ने हमारे मुँह में एक लाख ग्रन्थियाँ बनाई हैं। जब यह लार पेट में पानी के साथ जाती है तो वात, पित्त, व कफ तीनों समान हो जाते हैं फिर मल त्यागने में कोई परेशानी नहीं होती। कब्ज समाप्त होती है इससे पेट की खराबी से उत्पन्न 80 रोग समाप्त होते हैं। इस प्रकार पानी पीने से मोटापा व मधुमेह पर चमत्कारिक प्रभाव पड़ता है, पेट तेजी से अन्दर की ओर जाता है।

2. जब भी आप भोजन करें उसके अंत में पानी न पिएं, इसको एक श्लोक में कहा गया है कि "भोजनांते विषम् वारी" अर्थात् भोजन के अंत में पानी पीना विष के समान है जब भी हम भोजन करते हैं और उसका प्रथम कौर पेट में जाता है तो पेट में जठराग्नि पैदा होती है और वह उस भोजन को पचाना आरंभ कर देती है, परंतु उस पर यदि पानी पी लिया जाए तो वह अग्नि बुझ जाती है, और फिर वह भोजन पचता नहीं सड़ता है, इसे एक उदाहरण द्वारा भी सिद्ध किया जा सकता है, माना आप चावल बना रहे हैं, पतीले में चावल व पानी रखा, आग जलाई, जैसे ही चावल उबले आग के ऊपर पानी डाला तो वह बुझ गई अब वह चावल कुछ समय पश्चात सड़न पैदा करने लगता है, अब प्रश्न उठता है कि पानी कब पिए तो भोजन के एक से 1½ घण्टे के बाद। क्योंकि तब तक जठराग्नि का प्रभाव कम हो जाता है। अब पानी पीने से वह भोजन भी आगे आसानी से खिसक जाता है। कुछ लोग कहते हैं, कि क्या भोजन के पहले पानी पी सकते हैं? हाँ परंतु कम से कम भोजन करने से 40–45 मिनट पहले; क्योंकि इतनी देर में वह पानी मूत्र में बदल जाता है।

3. पानी जब भी पिएं, गुनगुना ही पिएं। क्योंकि हमारे शरीर का तापमान 37 डिग्री सेल्सियस होता है यदि हम ठण्डा पानी पीते हैं, तो खून को पेट में दौड़ कर उसको गर्म करना पड़ता है और उस समय खून को जहाँ हमारे अंगों को उसकी आवश्यकता है वहाँ नहीं जा पाता। क्योंकि उसे उस समय आवश्यक रूप से उस पानी का तापमान बढ़ाना पड़ता है और यदि बार–बार यही क्रिया दोहराई जाती है तो जिन अंगों को बार–बार खून कम मिलता है वे कमजोर होने लगते है और कई बीमारियाँ होने लगती हैं।

4. पानी जब भी पिएं घूँट–घूँट करके व मुँह में घुमा कर ही पिएं, इससे लार पेट में जाती है, अब आधुनिक विज्ञान के अनुसार कहें तो पेट में (HCl) हाइड्रोक्लोरिक अम्ल बनता है और यदि हम पेट में लार पानी के साथ डालते हैं तो वह अम्लीयता को शांत कर देती है क्योंकि लार क्षारीय है।

भोजन करने के नियम

इसी प्रकार भोजन करने के भी नियम हैं; भोजन हमारे देश की परिस्थितियों के अनुसार नाश्ता नहीं, सुबह पूर्ण भोजन का विधान है, इसलिए सूर्योदय से 2½ घण्टे बाद तक सुबह का भोजन हो जाना चाहिए। जैसे सूर्योदय 7 बजे हो, तो 8½ तक पूर्ण भोजन हो जाना चाहिए ओर यह सुबह को भोजन इस प्रकार हो कि तन के साथ मन को प्रसन्नता हो अर्थात् सुबह के भोजन में वह सब लें जिससे मन को भी अच्छा लगे। आधुनिक विज्ञान के अनुसार यदि सुबह मन के अनुसार भोजन किया जाए तो पीनिमल ग्रन्थि एक प्रकार का रस छोड़ती है जोकि भोजन को शीघ्र पचा देती है, आयुर्वेद के अनुसार इस समय जठरग्नि बहुत प्रबल होती है इसलिए सुबह का भोजन बहुत जल्दी पच जाता है इसके अन्त में फलों का रस लिया जा सकता है। दिन का भोजन भी 1 से 1½ बजे तक हो जाना चाहिए, परन्तु इस समय जठाराग्नि सुबह के कुछ कम प्रबल होती है, इसलिए सुबह की अपेक्षा कुछ कम भोजन किया जाए तो अच्छा होगा, यदि सवेरे चार रोटियाँ खाई है तो इस भोजन में तीन ही रोटी खाई जाए, इस भोजन के पश्चात् तर्क (मठा) लेने का नियम भी है इस भोजन को 60 वर्ष से अधिक आयु वाले लोग छोड़ भी सकते हैं, यदि वे दिन में मट्ठा (बिना मक्खन की लस्सी) पी सकते हैं, परंतु वह भी गुड़ डाल

कर, नमक नहीं क्योंकि नमक से उसमें उत्पन्न जीवाणु मर जाते हैं, जोकि शरीर के लिए बहुत उपयोगी हैं, जो लोग गुड़ भी नहीं ले सकते, वे काला नमक डाल सकते हैं। दिन में भोजन को करने के पश्चात् विश्राम अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि दिन में भोजन करने से रक्तदाब बड़ जाता है इसलिए आराम करें, परन्तु सिर्फ 50 मिनट तक ही; अन्यथा मोटापा बढ़ सकता है।

शाम का भोजन सूर्यास्त से 40 मिनट पहले होना चाहिए, यदि सूर्यास्त 6 बजे होता है तो शाम को भोजन 5 बज कर बीस मिनट पर हो जाना चाहिए। क्योंकि इस समय सूरज डूब रहा होता है। इसलिये जठराग्नि कुछ कम होती है इसलिए दिन से भी कम भोजन इस समय किया जाए। यदि आपने दिन में 3 राटियाँ खाईं है तो इस समय 2 ही खायें, परंतु भोजन के समय सूर्यास्त होता है इसलिए रक्तदाब कम हो जाता है। इस कारण इस भोजन के बाद घूमने अवश्य जाना चाहिए वह भी कम से कम 500 से 1000 कदम। फिर सोते समय दूध अवश्य लें। क्योंकि इस समय के भोजन के बाद शरीर में वह सभी तत्व मौजूद होते हैं जो दूध को पचाने में सक्षम होते हैं। भोजन जब भी करें सुखासन (आलती पालती मार कर) में बैठ कर व पूर्व या दक्षिण दिशा की ओर बैठ कर ही करें। इसका भी वैज्ञानिक आधार है जैसे हम सुखासन में बैठकर भोजन करते हैं तो सारा खून हमारे जठर की ओर आकर जठराग्नि पैदा करता है और भोजन आसानी से पच जाता है और यदि हम खड़े होकर खाना खाते हैं, तो वह खून हमारे पैरों के रास्ते नीचे चला जाता है, और भोजन पाचन की क्रिया उस प्रकार संचालित नहीं होती, जैसी कि सुखासन से होती है। अतः इससे भी पेट के रोग कब्ज, गैस पैदा होने लगते हैं। अगर कुर्सी पर बैठ कर खाना खाने की थाली को कुछ उँचे स्थान पर रखकर ही भोजन करना चाहिए। कुछ लोग जो अधिक श्रम करते हैं वे कुकड़ आसन में बैठ कर भी भोजन कर सकते हैं, यह आसन वही आसन है जैसा हम गाय या भैंस का दूध निकालते समय बैठते हैं।

अन्य नियम

इसके अतिरिक्त जब भी आप भोजन करें मन में एकाग्रता भी होनी चाहिए ताकि उस समय मन में किसी प्रकार की चिन्ता नहीं होनी चाहिए। यदि आप भोजन के पहले किसी चिंता से ग्रस्त है तो पहले उस कार्य को कर ले और तभी भोजन करें, मन के प्रसन्न होने पर, मन को स्वीकृति मिलती है और भोजन आसानी से पचता है क्योंकि हमारा सम्बन्ध शरीर के साथ मन से भी होता है।

इसके साथ ही हमारे पूर्वजों का कहना है कि भोजन पूर्व की ओर मुँह करके ही किया जाएँ यदि इसमें आपत्ति हो, तो दक्षिण की ओर मुँह करके भोजन किया जा सकता है। कभी भी उत्तर या पश्चिम की ओर मुँह करके भोजन न किया जाए, इसका वैज्ञानिक आधार भी है पूर्व व दक्षिण में मुँह करके बैठने से शरीर में एक प्रकार खिंचाब पैदा होता है, जिससे भोजन के पचने में सुविधा होती है।

इसके साथ ही सोने का भी नियम निर्धारित है जब भी सोएं जमीन पर साऐं या फिर सख्त शैय्या पर लेटे और सिर पूर्व या दक्षिण की ओर करके सोएं। इससे शरीर में खिंचाव रहता है और सख्त शैय्या पर सोने से हमारी मेरूदण्ड का व्यायाम भी हो जाता है। इसलिए मेरूदण्ड सम्बन्धी कोई बीमारी नहीं होती।

यदि उपरोक्त नियमों का पालन किया जाए तो निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि आप जीवन भर निरोगी रहेंगे और 100 वर्ष तक की आयु भी प्राप्त कर सकते हैं। जो बीमार हैं, वे छः माह के बाद बीमारी से मुक्ति के लक्षण पाएंगे, इससे पेट के सभी रोग गैस, अम्ल पित्त, मोटापा, शुगर, थाइराइड, घुटनों का दर्द, कब्ज, अल्सर, कोलेस्टरॉल, हार्ट अटैक आदि रोगों पर शीघ्र ही नियंत्रण होने लगता है।

○○○

9

प्रो. केदारनाथ उडुपाः भारत के प्रथम किडनी प्रतिरोपण सर्जन

डॉ. दिलीप कुमार मौर्य

सर्व विद्या की राजधानी "काशी" ने अपनी गोद में अनेक लोगों को यश–कीर्ति की अनन्त ऊँचाइयों तक पहुँचा कर अमर कर दिया। ऐसे ही काशी में बढ़े, पले–संवरे एक महान समाजसेवी और उत्कृष्ट शल्य चिकित्सक डॉ. केदारनाथ उडुपा ने काशी में शिक्षा और प्रवास प्राप्त कर मानव सेवा एवं चिकित्सा के क्षेत्र में भारत का नाम सारी दुनियां में रोशन किया। उन्होंने मृत्युपर्यन्त काशी में रहकर चिकित्सा के माध्यम से समाज के निर्बल लोगों की सेवा की। वे आजीवन स्वास्थ्य–चेतना जागृत करने का काम करते रहे। उन्होंने सुदूर ग्रामीण अंचलों में शिविर लगाकर स्वास्थ्य चेतना का प्रचार–प्रसार किया। इस महान चिकित्सक ने शल्य चिकित्सा के क्षेत्र में भारत में पहली बार वृक्क (किडनी) प्रतिरोपित (ट्रांसप्लांट) कर भारतीय चिकित्सा के क्षेत्र में एक नया इतिहास रच दिया। यद्यपि इस महान चिकित्सक का जन्म दक्षिण भारत के कर्नाटक प्रान्त में हुआ था, लेकिन उन्होंने काशी को अपना कर्म क्षेत्र बनाया और मृत्युपर्यन्त यहीं सक्रिय रहे।

इस महान समाजसेवी चिकित्सक का जन्म 28 जुलाई 1920 में कर्नाटक प्रान्त के कटील जनपद के कोडेत्तर नामक स्थान पर हुआ था। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा कटील और मद्रास में हुई। शुरूआती शिक्षा के बाद सन् 1936 में आपने महामना पं. मदन मोहन मालवीय जी द्वारा 1916 में स्थापित काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के आयुर्वेद महाविद्यालय के ए.एम.एस. की उपाधि प्राप्त की। ए. एम. एस. की पढ़ाई पूरी कर उन्होंने 1943 से 46 तक मुम्बई के आर. एस. पोद्दार चिकित्सा महाविद्यालय एवं के. ई. एम. चिकित्सालय में व्यावहारिक चिकित्सीय प्रशिक्षण (इन्टर्नशिप) पूरा किया।

सन् 1948 ई. में डॉ. उडुपा शल्य चिकित्सा के उच्चस्तरीय अध्ययन के लिए अमेरिका चले गए। वहाँ वे सन् 1949 तक रहे। डॉ. उडुपा अमेरिका से एम. एस., एफ,आर.सी.एस. की उपाधि लेकर स्वदेश लौटे। शल्य क्रियात्मक में उच्चस्तरीय विदेशी उपाधि और विशेष क्रियात्मक योग्यता के चलते भारत आते ही उनकी नियुक्ति हिमाचल प्रदेश में शल्य चिकित्सक के पद पर हो गई। चिकित्सा के क्षेत्र में विशिष्ट योग्यता का धारक होने के चलते जल्दी ही उन्हें शिमला भेज दिया गया। लगभग पाँच वर्षें तक शिमला में काम करने के बाद वे पुनः उच्चस्तरीय शोध के लिए इंग्लैण्ड चले गए। यहाँ उन्होंने इंग्लैण्ड के चर्चिल विश्वविद्यालय के बोस्टन स्थित स्कूल ऑफ मेडीसिन में प्रवेश ले लिया। यहाँ डॉ. उडुपा ने हावर्ड के विख्यात शल्य चिकित्सक एवं जीवविज्ञानी 'प्रो. जे. इंग्लवर्ट डनकी' के साथ दो वर्षों तक 'घाव के भराव' के सम्बन्ध में मौलिक और विश्वस्तरीय शोध कार्य सम्पादित किया। उन्होंने अपने इस शोध से सम्बन्धित आधा दर्जन शोधपत्र लिखकर उन्हें विश्वस्तरीय शोध–पत्रिकाओं में प्रकाशित किया। 'घाव के भराव' और 'कोशिकाओं की मरम्मत' के सम्बन्ध में उनके द्वारा किए शोध की विश्व भर में चर्चा हुई।

डॉ. उडुपा के द्वारा चिकित्सा और स्वास्थ्य के सम्बन्ध में किए गए कार्यों से प्रभावित होकर भारत सरकार ने उनकी अध्यक्षता में स्वास्थ्य एवं परिवार नियोजन मंत्रालय के अन्तर्गत एक बृहद कमेटी गठित कर ग्रामीण स्वास्थ्य एवं चिकित्सा सम्बन्धी सुझाव मांगे, इस कमेटी ने 1959 में भारत सरकार को अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया, जिसे पूरी तरह स्वीकार कर लिया गया। आगे चलकर उनकी अध्यक्षता वाली इस कमेटी के प्रतिवेदन को भारत सरकार की चिकित्सकीय नीति के रूप में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ।

1959 ई. में ही डॉ. उडुपा को उनकी मातृसंस्था काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में आयुर्वेद महाविद्यालय के प्राचार्य पद पर आमंत्रण प्राप्त हुआ, जिसे उन्होंने सहर्ष स्वीकार कर लिया। वे यहाँ शल्य विभाग में प्राध्यापक के साथ ही प्राचार्य के पद पर आसीन हो गए। प्राचार्य पद पर उनके आसीन होने के मात्र एक वर्ष बाद ही 1960 ई. में यह आयुर्वेद महाविद्यालय, चिकित्सा विज्ञान महाविद्यालय के रूप में परिवर्तित हों गया। उस समय आयुर्वेद की स्नातक उपाधि ए.बी.एम.एस. बन्द कर उसके स्थान पर आधुनिक चिकित्सा पद्धति के एम.बी.बी.एस. पाठ्यक्रम की पढ़ाई शुरू हुई। उसके साथ ही संस्थान में आयुर्वेद में एम.डी. की पढ़ाई और शोध कार्य प्रारंभ किया गया।

प्रो. उडुपा के निर्देशन में इस महाविद्यालय का चहुमुखी विकास शुरू हुआ। इसे भारतीय चिकित्सा परिषद् और ब्रिटिश मेडिकल कौंसिल से मान्यता प्राप्त हुई। उस समय पूरे देश में यह महाविद्यालय एक ही परिसर में दो चिकित्सा पद्धतियों के अध्ययन–अध्यापन एवं चिकित्सा का अकेला केन्द्र था। यह विलक्षण कार्य प्रो. उडुपा की देख–रेख में ही सम्भव हो सका। 1962 में प्रो. उडुपा के प्रयास से यह चिकित्सा विज्ञान महाविद्यालय, चिकित्सा विज्ञान संस्थान का रूप पाकर देश के श्रेष्ठतम् चिकित्सा विज्ञान महाविद्यालय की श्रेणी में शामिल हो गया। यहाँ इलाज के लिए मात्र स्थानीय लोग ही नहीं वरन् पूर्वी उत्तर प्रदेश,

बिहार, मध्य प्रदेश और पडोसी देश नेपाल से भी लोग आने लगे। तब इस संस्थान को "पूर्वांचल का एम्स" कहा जाने लगा। डॉ. उडुपा इस चिकित्सा विज्ञान संस्थान के संस्थापक निदेशक बने। वे अपनी सेवानिवृत्ति तक इस पद पर आसीन रहे। प्रो. उडुपा ने विश्व स्वास्थ्य संगठन के परामर्शदाता के रूप में सारी दुनिया का भ्रमण कर आयुर्वेद का प्रचार–प्रचार किया।

अपने निदेशकीय कार्य काल में प्रो. उडुपा ने अपने भगीरथ प्रयास से इस संस्थान को काफी आगे बढ़ाया। उन्होंने यहाँ अनेक नये विभागों का सृजन किया। उनके कार्यकाल में ही उच्चस्तरीय शोध के लिए केन्द्रीय सर्जिकल प्रयोगशाला की स्थापना हुई, आधुनिक जैव चिकित्सा के साथ ही आयुर्वेद एवं आधुनिक चिकित्सा विज्ञान से सम्बन्धित विशेषीकृत शोध कार्य सम्पादित होने लगे। इसी प्रकार उन्होंने आयुर्वेद में उच्चस्तरीय रसायन सम्बन्धी शोध के लिए 'औषधीय रसायन विभाग' की भी स्थापना किया। इसके अलावा प्रो. उडुपा ने इस चिकित्सा विज्ञान संस्थान में दर्जनों नए विभाग खुलवाए। ग्रामीणजनों के चिकित्सा, स्वास्थ्य और विकास में प्रो. उडुपा की विशेष रुचि थी अतः उन्होंने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय परिसर में 'समन्वित ग्रामीण विकास केन्द्र' की स्थापना की। उनके द्वारा स्थापित कई विभाग आज उच्चस्तरीय कार्य कर रहे हैं।

प्रो. उडुपा विलक्षण चिकित्सक, सफल अध्यापक और उच्चस्तरीय शोधकर्ता होने के साथ ही एक निपुण प्रशासक भी थे। उनकी प्रशासनिक क्षमता की चर्चा आज भी होती है। आयुर्वेद महाविद्यालय, चिकित्सा विज्ञान महाविद्यालय के प्राचार्य और आधुनिक चिकित्सा विज्ञान संस्थान के निदेशक के अतिरिक्त काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के रेक्टर और कार्यवाहक कुलपति के पदों पर रहते हुए उनके द्वारा किए गये, कार्यों को यहाँ उदाहरण के रूप में पेश किया जाता है। वे पहली बार 1967 में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के रेक्टर पद पर नियुक्त हुए। पुनः दूसरी बार 1981 में रेक्टर और कार्यवाहक कुलपति के दायित्व का सफलता पूर्वक निर्वहन किया। रेक्टर और कार्यवाहक कुलपति के इन दोनों कार्यकालों में उन्होंने अपनी विशेष प्रशासनिक क्षमता का परिचय दिया। इस काल में निदेशक एवं चिकित्सकीय व्यस्ताओं के बावजूद उन्होंने रेक्टर और कुलपति पद की गरिमा को बनाए रखते हुए विश्वविद्यालय के विकास के लिए कई महत्वपूर्ण कार्य किए, जो आज भी याद किए जाते हैं।

प्रो. उडुपा ने शल्य चिकित्सा के क्षेत्र में अपने विलक्षण कार्यों से अनेक कीर्तिमान स्थापित किए हैं। उनके शल्यकर्म का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत रहा है। एक ओर जहाँ उन्होंने 1968 में साधनों की कमी के बावजूद चिकित्सा विज्ञान संस्थान में भारत का पहला "सफल किडनी प्रत्यारोपण" शल्य क्रिया से अपनी विलक्षण शल्य क्षमता का परिचय दिया। इन जटिल आपरेशनों के समय प्रो. उडुपा ने कभी भी साधनों की कमी का बहाना नहीं रोया। वास्तव में इस सम्बन्ध में उनकी सोच भारत के एक मात्र वैज्ञानिक नोबेल पुरस्कार प्राप्तकर्ता प्रो. चन्द्रशेखर वेंकट रामन के समान थी। उन्होंने भी अभावों और

390 HRD / 2018—13

देश की गुलामी भुलाकर अपने शोध 'प्रकाश प्रकीर्णन' की अपनी खोज को अंजाम तक पहुँचाया था। वास्तव में इन दोनों महापुरुषों के कार्य में समर्पण और दृढ़ इच्छाशक्ति में एक जैसी समानता दिखाई पड़ती है।

विलक्षण शल्य चिकित्सक होने के साथ ही प्रो. उडुपा एक उच्चस्तरीय औषधीय उपचारक भी थें वे पीड़ित रोगियों के प्रति आजीवन समर्पित रहे। मानव मात्र की पीड़ा के प्रति उनका यह समर्पण भगवान बुद्ध की तरह उनके मन में बसी, दया, करुणा के चलते ही था। वास्तव में उनके मन में बसने वाली इसी मानवीय संवेदना ने ही उनकी चिकित्सकीय क्षमता को बहुआयामी और विस्तृत बना दिया।

डॉ. उडुपा एक समर्थ और प्रखर शोधकर्ता भी थे। उन्होंने आधा दर्जन पुस्तकें, लगभग दो सौ से अधिक शोध–पत्र और कई मोनोग्राफ भी प्रकाशित कराए। उनके अधिकांश शोध–छात्रों को पी–एच. डी. की उपाधि के लिए शोध–निर्देशन प्रदान किया है।

28 जुलाई, 1980 को प्रो. उडुपा ने चिकित्सा विज्ञान संस्थान के निदेशक और प्रोफेसर पद से एक साथ अवकाश प्राप्त किया। संस्थान की नियमित सेवा से मुक्त होने के बाद भी वे 'एमेरेटस प्रोफेसर' के रूप में सक्रिय रहकर नई पीढ़ी के चिकित्सकों को दिशा निर्देशन और परामर्श देने के साथ जरूरतमन्दों की सेवा करते रहे। उन्होंने अपने स्वास्थ्य और चिकित्सा सम्बन्धी अनुभवों को एक सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में आजीवन समाज के जरूरतमंद, अभावग्रस्त, अंतिम व्यक्ति तक पहुँचाने का प्रयास किया। अपने इस अभियान को सफल बनाने के लिए उन्होंने भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद् एवं योजना आयोग के संयुक्त तत्वावधान में वाराणसी जनपद के ग्रामीण क्षेत्रों के प्राथमिक स्वास्थ्य सुधार के सम्बन्ध में नीतिनिर्माण की कार्ययोजना तैयार की और उसे संचालित किया। प्रो. उडुपा के निर्देशन में इस परियोजना के माध्यम से संकलित तथ्यपरक प्रतिवेदन को वर्तमान में राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन (एन.आर.एच.एम.) के रूप में पूरे देश में लागू किया गया।

वास्तव में प्रो. केदारनाथ उडुपा प्राचीन भारतीय ऋषि–चरक और सुश्रुत की परम्परा के संवाहक आधुनिक चिकित्सक थे। आज भी उनके शिष्य देश के चर्चित चिकित्सकों के रूप में विश्व भर में उनके विचारों और परंपरा को बनाए हुए हैं। इस महान समाजसेवी चिकित्सक का निधन 2 जुलाई 1992 में बहत्तर वर्ष की उम्र में वाराणसी में हुआ।

○○○

10

प्राकृतिक तटरक्षक : मैंग्रोव वन

डॉ. दीपक कोहली

मैंग्रोव सामान्यतः वे पेड़ व पौधे होते हैं, जो खारे पानी (Brackish water) में तटीय क्षेत्रों में पाए जाते हैं। ये उष्णकटिबंधीय और उपोष्ण–कटिबंधीय क्षेत्रों में पाए जाते हैं। मैग्रोव शब्द की उत्पत्ति पुर्तगाली शब्द 'मैग्यू' तथा अंग्रेजी शब्द 'ग्रोव' से मिलकर हुई है। इन वनस्पतियों को तटीय वनस्पतियां अथवा कच्छीय वनस्पतियां भी कहा जाता है। ये वनस्पतियां समुद्र तटों पर नदियों के मुहानों व ज्वार प्रभावित क्षेत्रों में पाई जाती हैं। विषुवत रेखा के आसपास के क्षेत्रों में जहाँ जलवायु गर्म तथा नम होती है, वहाँ मैंग्रोव वनस्पति विश्व के लगभग 112 देशों में पाई जाती है जिनमें अधिकतर देश उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में स्थित हैं।

इन वनस्पतियों को पनपने के लिए कुछ मूलभूत परिस्थितियों का होना अत्यंत आवश्यक है, जैसे जल का निरंतर प्रवाह, मिट्टी में ऑक्सीजन का कम मात्रा में होना, सर्दियों में औसत तापमान 16 डिग्री से अधिक रहना। पृथ्वी पर इस प्रकार के मैंग्रोव वनों का विस्तार एक लाख वर्ग किलोमीटर है। मैंग्रोव वन मुख्य रूप से ब्राजील (25,000 वर्ग किलोमीटर), इंडोनेशिया (21,000 वर्ग किलोमीटर) और ऑस्ट्रेलिया (11,000 वर्ग किलोमीटर) में है। केवल ब्राजील में विश्वभर में पाए जाने वाले मैंग्रोव वनों का लगभग आधा मौजूद है। भारत में 6,740 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र पर इस प्रकार के वन फैले हुए हैं जो विश्व के मैंग्रोव वनों का सात (07) प्रतिशत हैं इन वनों में 50 से भी अधिक जातियों के मैंग्रोव पौधे पाए जाते हैं। भारत के मैंग्रोव वनो का 82 प्रतिशत देश के पश्चिमी भागों में पाया जाता है।

मैंग्रोव वृक्षों के बीजों का अंकुरण एवं विकास मातृ–वृक्ष के ऊपर ही होता है। जब समुद्र में ज्वार आता है और पानी जमीन की ओर फैलता है, तब कुछ अंकुरित बीज पानी के बहाव से टूटकर मातृवृक्ष से अलग हो जाते हैं और पानी के साथ बहने लगते हैं। ज्वार के उतरने पर ये जमीन पर यहाँ–वहाँ बैठ जाते हैं और जड़ें निकालकर वही जम जाते हैं। मैंग्रोव वनों का विस्तार इसी प्रक्रिया से होता है। इसी कारण उन्हें जरायुज (viviparous) कहा जाता है, यानी सजीव संतानों को उत्पन्न करने वाला।

चुंकि ये पौधे अधिकतर लवणीय पानी से ही काम चलाते हैं, इसलिए उनके लिए यह आवश्यक होता है कि इस पानी में मौजूद क्षार उनके शरीर में एकत्र न होने लगे। इन वृक्षों की जड़ों एवं पत्तियों पर खास तरह की क्षार ग्रंथिया होती है, जिनसे क्षार निरंतर तरल रूप में निकलता रहता है। वर्षा पानी इस क्षार को बहा ले जाता है। इन पेड़ों की एक अन्य विशेषता उनकी श्वसन जड़ें (Pneumatophores) है। पानी में ऑक्सीजन की कमी के कारण इन पेड़ों की जड़ों को पर्याप्त ऑक्सीजन नहीं मिल पाती है। इस समस्या से निपटने के लिए उनमें विशिष्ट प्रकार की जड़ें होती है, जो सामान्य जड़ों के विपरीत ऊपर की ओर जमीन से निकल आती हैं। इन श्वसन जड़ों में छोटे–छोटे छिद्र होते (lenticels) हैं जिसकी सहायता से ये ऑक्सीजन ग्रहण कराकर उसे नीचे की जड़ों को पहुँचाती है। इन जड़ों को श्वसन–जड़े या श्वसन–मूल कहा जाता है। इन श्वसन जड़ों का दूसरा कार्य, दलदली भूमि में उन वृक्षों को स्थिरता प्रदान करना भी है। मैंग्रोव पौधों के तनों के केन्द्र में कठोर लकड़ी नहीं पाई जाती है। इसके स्थान पर पतली नलिकाएं होती हैं जो समान रूप से पूरे तने में फैली रहती हैं। इस कारण मैंग्रोव पौधें बाहरी ढाल तथा तने को होने वाली क्षति को सहन कर सकते हैं।

मैंग्रोव वृक्षों में जल संरक्षण की योग्यता भी पाई जाती है। वाष्पोत्सर्जन द्वारा पानी के उत्सर्जन को रोकने के लिए इन पौधों में मोटी चिकनी पत्तियां होती है। पत्तियों की सतह पर पाए जाने वाले रोम पत्ती के चारों रसदार पत्तियों में पानी भी संचित कर रसकते हैं। ये सभी विशेषताएं इन्हें प्रतिकूल वातावरण में जीवित रहने योग्य बताती हैं।

विश्व में चार मुख्य प्रकार के मैंग्रोव वृक्ष/पौधे पाए जाते हैं, लाल मैंग्रोव वनस्पति, काली मैंग्रोव वनस्पति, सफेद मैंग्रोव वनस्पति और बटनवुड मैंग्रोव। लाल मैंग्रोव वनस्पति की श्रेणी में वे पौधे आते हैं जो बहुत अधिक खारे पानी को सहन करने की क्षमता रखते हैं तथा समुद्र के नजदीक उगते हैं। **राइजोफोरा** प्रजाति के वृक्ष इस श्रेणी के अंतर्गत आते हैं।

काली मैंग्रोव वनस्पति की श्रेणी में वे पौधे आते हैं जिनकी खारे पानी को सहने की क्षमता अपेक्षाकृत कम होती है। **ब्रुगेरिया** प्रजाति के वृक्ष इस श्रेणी के अंतर्गत आते हैं।

सफेद मैंग्रोव वनस्पति का नाम इनकी चिकनी सफेद छाल के कारण पड़ा है। इन पौधों को इनकी जड़ों तथा पत्तियों की विशेष प्रकार की बनावट के कारण अलग से पहचाना जा सकता है। **ऐविसेनिया** प्रजाति के पौधे इस श्रेणी के अन्तर्गत आते है।

बटनबुड मैंग्रोव वनस्पति के पौधे झाड़ी के आकार के होते हैं तथा इनका यह नाम इनके लाल–भूरे रंग के तिकोने फलों के कारण है। **कोनोकार्पस** प्रजाति के पौधे इस श्रेणी में आते हैं।

भारत में मैंग्रोव वनों का 59 प्रतिशत पूर्वी तट (बंगाल की खाड़ी), 23 प्रतिशत पश्चिमी तट (अरब सागर) तथा 18 प्रतिशत अंडमान और निकोबार द्वीप समूह में पाया जाता है।

भारत में विश्व के कुछ प्रसिद्ध मैंग्रोव क्षेत्र पाए जाते हैं। सुन्दरवन विश्व का सबसे बड़ा मैंग्रोव क्षेत्र है। इसका कुछ भाग भारत में तथा कुछ बांग्लादेश में है। सुन्दरवन का भारत में आने वाला क्षेत्र गंगा तथा ब्रह्मपुत्र नदियों के डेल्टा क्षेत्रों के पश्चिमी भाग में है। ये दोनों ही नदियां हिमालय के हिमाच्छादित क्षेत्रों से निकलती है और समुद्र में गिरने से पूर्व छोटी शाखाओं में बंटकर उस डेल्टा क्षेत्र का निर्माण करती हैं जिसमें सुन्दरवन स्थित है। उड़ीसा तट पर स्थित महानदी डेल्टा का निर्माण महानदी, ब्रहमणी तथा वैतरणी नदियों द्वारा होता है। इस क्षेत्र में ताजे पानी की आपूर्ति तीन नदियों द्वारा होने के कारण यहां भी जैवविविधता तथा पौधों का घनत्व सुन्दरवन की ही तरह अधिक है। गोदावरी मैंग्रोव क्षेत्र (आंध्र प्रदेश) गोदावरी नदी के डेल्टा क्षेत्र में स्थित है।

मनुष्य द्वारा मैंग्रोव वनों का प्रयोग अनेक रूपों में किया जाता है। पारंपरिक रूप से स्थानीय निवासियों द्वारा इनका प्रयोग भोजन, औषधि, टेनिन, ईंधन तथा इमारती लकड़ी के लिए किया जाता रहा है। तटीय इलाकों में रहने वाले लाखों लोगों के लिए जीवनयापन का साधन इन वनों से प्राप्त होता है तथा ये उनकी पारंपरिक संस्कृति को जीवित रखते हैं। मैंग्रोव वन धरती तथा समुद्र के बीच एक उभयप्रतिरोधक (बफर) की तरह कार्य करते हैं तथा समुद्री प्राकृतिक आपदाओं से तटों की रक्षा करते हैं। ये तटीय क्षेत्रों में तलछट के कारण होने वालो जान–माल के नुकसान को रोकते हैं।

मैंग्रोव पारिस्थितिक तंत्र मत्स्य उत्पादन के लिए भी महत्वपूर्ण है। मछली तथा शंख मीन (शैल फिश) की बहुत सी प्रजातियों के लिए मैंग्रोव प्रजनन स्थल तथा संवर्धन गृह की तरह कार्य करते हैं। मछलियों के अतिरिक्त मैंग्रोव वनों में अन्य जीव–जन्तु भी पाए जाते है। जैसे– बाघ (बंगाल टाइगर), मगरमच्छ, हिरन, फिशिंग कैट तथा पक्षी। मैंग्रौव पारिस्थितिकी से सम्बद्ध अन्य जीव डॉल्फिन, मैंग्रोव बंदर, ऊद बिलाव आदि हैं। अनेक जीवों द्वारा मैंग्रोव की पत्तियाँ खाई जाती हैं। इस प्रकार मैंग्रोव बहुत सारे जीव–जंतुओं के लिए प्रकृति के वरदान की तरह हैं।

मैंग्रोव वृक्ष पानी से कार्बनिक अपशिष्ट पदार्थों तथा मिट्टी के कणों को अलग कर देते हैं जिससे पानी साफ होता है तथा उसमें पोषक तत्वों की मात्रा बढ़ जाती है। यह अन्य सम्बद्ध पारिस्थितिक तंत्रों के लिए लाभप्रद है। मैंग्रोव क्षेत्रों में प्रवाल भित्तियाँ, समुद्री शैवाल तथा समुद्री घास अच्छी तरह पनपती हैं। मैंग्रोव पौधों की पत्तियों में लेवोनाइड होता है जो पराबैंगनी किरणों को राकने का कार्य करता है।

मैंग्रोव की कुछ प्रजातियाँ जैसे– राइजोफोरा के वृक्ष इन प्राकृतिक आपदाओं के विरूद्ध ढाल की तरह कार्य करते हैं।

मैंग्रोव वनों की सुरक्षात्मक भूमिका का सबसे अच्छा उदाहरण तब देखने को मिला, जब 29 अक्टूबर, 1999 को उड़ीसा के तट पर चक्रवात आया था। इस चक्रवात ने मैंग्रोव रहित क्षेत्रों में

390 HRD / 2018—14

भारी तबाही मचाई। जबकि उन क्षत्रों में जहां मैंग्रोव वृक्षों की संख्या अधिक थी, वहाँ नुकसान नगण्य था। इसी प्रकार के अनेक उदाहरण है।

सन् 2004 में तटीय क्षेत्रों में सुनामी से हुई भयंकर तबाही से वे क्षेत्र बच गए जहां मैंग्रोव वन इन लहरों के सामने एक ढाल की तरह खड़े थे। उस समय इन वनों के हजारों लोगों की जान–माल की रक्षा की। इस घटना के बाद तटीय क्षेत्र के गांवों में रहने वाले लोगों ने मैंग्रोव वनों को संरक्षण देने का निश्चय किया।

मैंग्रोव वन लहरों की तीव्रता को कम करके तटों के क्षरण को रोकते हैं। तटों पर वनस्पति की सघनता तथा पानी की गहराई जितनी अधिक होगी उतना ही अधिक प्रभावी ढंग से लहरों की तीव्रता को कम किया जा सकेगा। इसमें कोई संदेह नहीं कि मैंग्रोव वन तटों पर एक सजीव समुद्री दीवार की तरह होते हैं जो तटों का क्षरण रोकते है।

मैंग्रोव वनों का औषधीय उपयोग भी है। मैंग्रोव पौधों की प्रजातियों का उपयोग सर्पदंश, चर्मरोग, पेचिश तथा मूत्र सम्बन्धी रोगों के उपचार के लिए तथा रक्त शोधक के रूप में करते हैं। **एकेन्यस इलिसीफोलियस** प्रजाति के फलों का उपयोग सर्पदंश तथा गुर्दे की पथरी के उपचार के लिए किया जाता है। **ऐविसीनिया ऑफिसिनेलिस** की पत्तियों को उबालकर उनके रस का उपयोग स्थानीय मछुआरों द्वारा पेट तथा मूत्र संबंधी रोगों के उपचार के लिए किया जाता है।

सौभाग्य से पिछले कुछ समय से मैंग्रोव वनों में लोगों की रुचि जाग्रत हुई है। मानव सभ्यता के तथाकथित विकास के कारण अन्य पारिस्थितिक तंत्रों की तरह मैंग्रोव क्षेत्रों के लिए भी खतरा उत्पन्न हो गया है। तटीय इलाकों में बढते औद्योगीकरण तथा घरेलू एवं औद्योगिक अपशिष्ट पदार्थों को समुद्र में छोड़े जाने से इन क्षेत्रों में प्रदूषण फैल रहा है।

समुद्र तटवर्ती क्षेत्रों में मैंग्रोव के विकास के कई कार्यक्रम आरम्भ किए गए है। भारत में भी इस दिशा में महत्वपूर्ण कार्य हो रहा है। तमिलनाडु के पिचावरम क्षेत्र में मैंग्रोव वृक्षारोपण के लिए वृहद अभियान चलाया गया जिससे क्षेत्र में मैंग्रोव वनों की सघनता बढ़ी है। मैंग्रोव वनों का उचित संरक्षण एवं संवर्धन आज समय की मांग है। तभी हम अपने आने वाल पीढ़ियों को समृद्ध मैंग्रोव वन विरासत में दे पाएंगे।

○○○

11

विज्ञान समाचार

डॉ. दीपक कोहली

विश्व का आठवां महाद्वीप हो सकता है जीलैंडिया:

धरती पर जल्द ही आठवां महाद्वीप अस्तित्व में आ सकता है। भूवैज्ञानिकों की राय अगर मानी गई तो जीलैंडिया नया महाद्वीप होगा। उन्होंने इसकी पहचान आस्ट्रेलिया के पूर्व में दक्षिण पश्चिम प्रशांत महासागर के 40.9 लाख वर्ग किलोमीटर लंबे पानी में डूबे हुए क्षेत्र के रूप में की है। इसके तटीय क्षेत्रों में बहुतायत में जीवाश्म ईंधन मिलने की संभावना जताई गई है। इसे भारतीय उपमहाद्वीप के बराबर बताया जा रहा है।

शोधकर्ताओं के अनुसार, भारत के गोंडवाना क्षेत्र का पांच प्रतिशत हिस्सा भी कभी इस संभावित महाद्वीप का हिस्सा रह चुका है। अगर इसे मान्यता मिलती है तो यह एशिया, यूरोप, अफ्रीका, अमेरिका, दक्षिणी अमेरिका, आस्ट्रेलिया और अंटार्कटिका के बाद आठवां महाद्वीप होगा। 94 प्रतिशत समुद्र में डूबे जीलैंडिया में न्यूजीलैंड और फ्रांस नियंत्रित क्षेत्र न्यू कैलेडोनिया को भी शामिल बताया जा रहा है।

न्यूजीलैंड की 'विक्टोरिया यूनिवर्सिटी' और आस्ट्रेलिया की 'यूनिवर्सिटी ऑफ सिडनी' के शोधकर्ताओं सहित 11 भूवैज्ञानिकों ने 'जीलैंडिया : उपरोक्त दावा किया है। शोधकर्ताओं का कहना है कि जीलैंडिया में महाद्वीप होने की सभी चार महत्वपूर्ण खूबियां मौजूद हैं। महाद्वीपीय परत से बना यह क्षेत्र समीपवर्ती महासागरीय पटल से अपेक्षाकृत ऊंचा है। साथ ही इसमें ज्वालामुखी, रूपांतरित और तलछटी सभी तरह की चट्टाने हैं। शोधकर्ताओं के अनुसार, यह कोई अचानक की गयी शोधकर्ताओं और तलछटी सभी तरह की चट्टाने हैं। शोधकर्ताओं के अनुसार, यह कोई अचानक की गई खोज नहीं है बल्कि लगातार चिंतन का नतीजा है। जीलैंडिया महाद्वीप बनने के निर्धारित मानदंडों पर खरा उतरता है। जीलैंडिया नाम सबसे पहले भूभौतिकी वैज्ञानिक ब्रूस ल्यूनेडाइक ने 1995 में इस्तेमाल किया था।

जीलैंडिया को एकीकृत क्षेत्र साबित करने के लिए हाल ही में उपग्रह तकनीक और समुद्र तल के ग्रेविटी मैप का इस्तेमाल किया गया था। इसमें इस बात की पुष्टि हो गई कि यह एकीकृत क्षेत्र है। इसी आधार पर वैज्ञानिकों ने इसे महाद्वीप घोषित करने का दावा किया है। अध्ययन में कहा गया है कि जीलैंडिया का 94 प्रतिशत हिस्सा जो पानी में डूबा हुआ है, दरअसल लाखों वर्ष पूर्व वह आस्ट्रेलिया से ही टूटकर समुद्र में समाहित हो गया था। शोधकर्ताओं का कहना है कि जीलैंडिया की पहचान बहुत हद तक एक भूवैज्ञानिक महाद्वीप के रूप में की जानी चाहिए।

25,000 वर्ष पहले भारत में पाए जाते थे शुतुरमुर्ग :

मूल रूप से अक्रीका में निवास करने वाले, उड़ने में अक्षम पक्षी शुतुरमुर्ग करीब 25,000 वर्ष पहले भारत में रहते थे। कोशकीय व आण्विक शोध संस्थान, हैदराबाद ने एक अध्ययन में यह दावा किया है। शुतुरमुर्ग का मूल निवास स्थल अफ्रीका है, लेकिन कई जीव वैज्ञानिकों और पुरातत्विदों को समय–समय पर भारत में, मुख्य रूप से राजस्थान और मध्य प्रदेश में, शुतुरमुर्ग के अंडों के खोल मिले हैं।

हाल में शुतुरमुर्ग के जीवाश्म अंडों के खोल का डी. एन. ए. अध्ययन कराया गया। संस्थान के वरिष्ठ प्रधान वैज्ञानिक कुमरस्वामी थंगराज ने बताया कि, 'हमने डीएनए अध्ययन द्वारा शुतुरमुर्ग के अंडों के खोल का सफलतापूर्वक विश्लेषण किया। इससे प्रमाणित होता है कि भारत में पाए गए अंडों के खोल आनुवांशिक रूप से अफ्रीकी शुतुरमुर्ग के अंडों के खोल के समान हैं। थंगराज ने यह भी कहा कि अध्ययन से ज्ञान हुआ है कि अंडों के खोल कम से कम 25,000 साल पुराने हैं।

डीएनए में स्टोर किया गया कम्प्यूटर आपरेटिंग सिस्टम :

वैज्ञानिकों ने डीएनए के कम्प्यूटर ऑपरेटिंग सिस्टम में एक लघु फिल्म के साथ कुछ अन्य डेटा संरक्षित किया है। यह प्रगति आने वलो समय में बहुत अधिक कॉम्पैक्ट, जैविक भंडारण (बायलॉजिकल स्टोरेज) उपकरणों का वाहक बन सकता है जिसके अगले हजारों वर्ष तक चलने की संभावना है।

अमेरिका के 'कोलंबिया विश्वविद्यालय' और 'न्यूयॉर्क जीनोम केंद्र' के अनुसंधानकर्ताओं के नए अध्ययन में यह बात सामने आई है कि एक मोबाइल पर स्ट्रीमिंग विडियो के लिए डिजाइन किए गए एल्गोरिदम से डीएनए के पूर्ण स्टोरेज क्षमता का इस्तेमाल किया जा सकता है। यह स्टोरेज का आदर्श माध्यम साबित हो सकता है और सूखे एवं ठंडे स्थानों पर रखे जाने की स्थिति में हजारों वर्षों तक चल सकता है। इस अनुसंधान का प्रकाशन 'साइंस' जर्नल में हुआ है।

अंधेरे में चमकने वाले अनोखे मेंढक की प्रजाति मिली:

वैज्ञानिकों ने अंधेरे में चमकने वाले मेंढ़कों की एक नई प्रजाति को खोज निकाला है। इन मेंढकों को दक्षिणी अमेरिका के अर्जेंटीना में खोजा गया है। इसके ऊपर हरे, पीले और लाल रंग के छींटे हैं। सामान्य प्रकाश में ये रंग पोल्का डॉट्स की तरह ही नजर आते हैं, लेकिन अंधेरे में ये गहरे नीले और हरे रंग की रोशनी में चमकते हैं। जब शोधकर्ताओं ने पराबैंगनी किरणों से युक्त एक फ्लैशलाइट से इस मेंढक पर रोशनी फेंकी, तो

लाल की जगह उनके अंदर से गहरे हरे और नीले रंग का प्रकाश परावर्तित होने लगा। ये मेंढक ज्यादातर पेड़ों पर रहते हैं।

लघु तरंगदैर्ध्य पर प्रकाश को अवशोषित करने और लंबी तरंगदैर्ध्य पर उसे परावर्तित करने की यह प्रक्रिया पदार्थों में तो आम है परंतु जीवों में यह बहुत दुर्लभ मानी जाती है।

समुद्र में पाए जाने कई जलीय जीवों में यह गुण पाया जाता है।

इंसानों से दोगुना मांस खाती है मकड़ियां:

आर्थोपोडा जाति का छोटा सा जीव साल भर में इंसानों से ज्यादा मांस खा जाता है। यह जीव है मकड़ी, जो अंटार्कटिका के अलावा दुनिया के हर कोने में पाई जाती है। इस जीव के बारे में स्विट्जरलैंड और स्वीडन के शोधकर्ताओं ने नवीनतम् रिपोर्ट जारी की है। इसके मुताबिक दुनियाभर में मौजूद मकड़ियां इंसानों द्वारा खाए जाने वाले मांस से दुगना मांसाहार करती है। दुनिया में मकड़ी की 45 हजार से ज्यादा प्रजातियां है। जो जीव–जंतुओं का शिकार कर प्रकृति का संतुलन बनाए रखती है। यह रिपोर्ट–प्रसिद्ध जर्नल, 'नेचर' में प्रकाशित हुई है।

मकड़ियां अपने कद से बड़े जीवों को भी शिकार बनाती हैं। उनके भोजन में 90 प्रतिशत कीडे–मकोड़े एवं 10 प्रतिशत छिपकली, मेंढक, सांप, चमगादड़ भी शामिल हैं। धरती पर बढ़ रही जीव–जंतुओं की संख्या को कम करके मकड़ियां प्रकृति का संतुलन बनाए रखने में मदद करती है। कुल शिकार में 95 प्रतिशत हिस्सेदारी जंगलों और मैदानों में रहने वाली मकड़ियों की है।

इस रिपोर्ट में बताया गया है कि जहां इंसान प्रतिवर्ष लगभग 40 करोड़ टन मांसाहार करते हैं, वहीं दूसरी ओर मकड़ियां लगभग 80 करोड़ टन मांस का भक्षण करती हैं। मकड़ियों की घातक प्रजातियों में 'ब्राजीलियन वांडरिंग स्पाइडर' सबसे जहरीली होती है। यह प्रजाति मुख्य रूप से मध्य व दक्षिण अमेरिका में पाई जाती है। इसके काटने के कुछ क्षणों में ही जीव की मृत्यु हो जाती है और यह उस जीव का भक्षण कर लेती है।

भारत में मिला दुनिया का सबसे पुराना लाल शैवाल जैसा जीवाश्म :

वैज्ञानिकों ने मध्य भारत में लाल शैवाल का 1.6 अरब वर्ष पुराना जीवाश्म खोज निकाला है जो संभवतः धरती पर मौजूद पौधे के रूप में जीवन का सर्वाधिक पुराना सबूत है।

स्वीडन के 'म्यूजियम ऑफ नेचुरल हिस्ट्री' के शोधकर्ताओं ने इसे मध्य प्रदेश के चित्रकूट में खोजा है। इस खोज से पता चलता है कि आधुनिक बहुकोशकीय जीवन पूर्व की सोच से बहुत पहले ही पनप चुका था।

धरती पर जीवन के जो सबसे पहले साक्ष्य मिले हैं, वे कम से कम 3.5 अरब वर्ष पुराने हैं। लेकिन ये एकल कोशिका वाले जीवों के हैं। पहले की खोजों में मिले बहुकोशकीय जीव लगभग 60 करोड़ वर्ष पहले के हैं। वर्तमान खोज से पहले जिस लाल शैवाल की खोज हुई थी, वह 1.2 वर्ष

390 HRD / 2018—15

पुराना है। शोधकर्ताओं को लाल शैवाल जैसे दिखने वाले दो जीवाश्म, चित्रकूट में चट्टानों के नीचे अच्छी हालत में मिले हैं।

चतुष्पाद रोबोट तेजी से बदल सकता है अपनी चाल–ढाल :

वैज्ञानिकों ने पहली बार चार पैरों वाला एक ऐसा रोबोट विकसित किया है जो गति बदलने पर अपने आप ही अपनी चाल–ढाल बदल सकता है।

इस वैज्ञानिक प्रगति से विविध प्रकार के अनुप्रयोग हो सकते हैं जैसे आपदाकारी क्षेत्रों में काम करने वाले अनुकूलित पैर वाले रोबोट, उपयोगकर्ता पैर वाले रोबोट, कम्प्यूटर ग्राफिक्स एनीमेशन के लिए स्वचलितगति सृजक एल्गोरिद्म आदि।

जापान के 'टोहोकू विश्वविद्यालय के अनुसंधानकर्ताओं ने इस चतुष्पाद की चाल–ढाल में बदलाव को सफलतापूर्वक प्रदर्शित किया, उन्होंने विकेंद्रीकृत नियंत्रण–योजना के माध्यम से यह हासिल किया। इसके लिए सामान्य स्थानीय नियम का इस्तेमाल किया गया। जिसमें एक पैर, दूसरे पैर पर बोझ को भयंकर शरीर को सहारा देता है। उन्होंने इसकी पुष्टि की रोबोट के चाल–ढाल पैटर्न का ऊर्जा कार्यकुशलता प्रोफाइल, घोड़ों के प्रोफाइल से मिलता है। इस अनुसंधान से इस प्रणाली की बेहतर समझ पैदा होने की संभावना है कि कैसे चतुष्पाद गति बदलने पर कार्यकुशलता से चाल–ढाल बदल सकता है।

○○○

12

स्वैच्छिक रक्तदान – महादान

कैलाश नाथ गुप्त

जरूरतमंद रोगियों को सचमुच सुरक्षित रक्त की आवश्यकता होती है। माननीय उच्चतम न्यायालय ने पेशेवर रक्तदाताओं से रक्तदान पर पाबन्दी लगा दी है। अतः सामान्य नागरिकों द्वारा स्वैच्छिक रक्तदान एकमात्र विकल्प है। सभी ब्लड बैंकों को निरन्तर रक्त की आपूर्ति तब तक पूरी नहीं हो सकती, जब तक जगह–जगह रक्तदान कैम्प लगाकर स्वेच्छा से रक्तदान न किया जाए।

एक रक्तदान बचाये चार की जान–

मूल तथ्य –

1. 18–60 वर्ष की आयु का कोई भी स्वस्थ व्यक्ति (पुरुष अथवा स्त्री) रक्तदान कर सकता है।

2. रक्तदान प्रत्येक तीन महीने के अन्तर से अर्थात एक वर्ष में चार किया जा सकता है।

3. रक्तदान किसी भी सरकारी या मान्यता प्राप्त रक्त बैंक में किया जा सकता है।

4. रक्तदान में मात्र 300 से 350 मि.ली. रक्त निकाला जाता है।

5. रक्तदान एक कष्टरहित प्रक्रिया है। रक्तदान में केवल 5–10 मिनट का समय लगता है।

6. रक्तदान के तत्काल बाद आप अपने सामान्य कार्य कर सकते हैं। किसी प्रकार के आराम की आवश्यकता नहीं है।

7. रक्तदान का शरीर पर कोई कुप्रभाव नहीं है, अपितु वैज्ञानिक दृष्टि से यह शरीर के लिए आवश्यक तथा लाभप्रद है।

8. शरीर के पूरे रक्त का "17वां भाग" ही एक बार लिया जाता है, जबकि विदेशों में लगभग इस मात्रा का दुगना रक्त एक बार में लिया जाता है।

9. 45 किलोग्राम या इससे अधिक शारीरिक भार वाला हर व्यक्ति रक्त दे सकता है।

10. रक्त लेने से पूर्व 'पूर्ण शारीरिक जांच' तथा शरीर में रक्त की मात्रा की जांच की जाती है तथा पूर्ण रूप से योग्य पाये जाने के उपरांत ही रक्त लिया जाता है।

11. रक्त प्रशिक्षित चिकित्सकों द्वारा एसैप्टिक विधि तथा डिस्पोजेबल थैलियों में लिया जाता है, ताकि किसी भी प्रकार के संक्रमण की आशंका न रहे।

12. आवश्यकता पड़ने पर 'रक्तदाता' अपने परिवार के लिए एक वर्ष की अवधि तक दिये गये 'रक्त दाता कार्ड' के द्वारा रक्त प्राप्त कर सकता है।

13. रक्तदाता का होमोग्लोबिन 12.5 gms/dl. होना चाहिए।

14. सिस्टोलिक ब्लडप्रेशर 100 और 140 mm/Hg तथा डायस्टोलिक प्रेशर मर्करी का 70 और 100 mm/Hg के बीच होना चाहिए।

15. एक व्यक्ति के पास अपने शारीरिक वजन का 65–80 ml रक्त प्रति किलोग्राम होता है और वह सुरक्षित तौर पर 6–8 ml. खून/kg दे सकता है।

16. यह इन्जेक्शन की एक सुई से अधिक कष्ट नहीं देता।

17. लाइसेन्स प्राप्त ब्लड बैंक को ही रक्त दें। सभी सरकारी ब्लड बैंकों को लाइसेन्स प्राप्त होता है।

18. रक्त भी केवल लाइसेन्स प्राप्त ब्लड बैंक से ही लें। यह सुनिश्चित कर लें कि रक्त द्वारा संचरित सभी रोगों की जांच कर ली गई है।

19. रक्त शरीर में तब तक न चढ़वाये, जब तक कि वह अत्यन्त आवश्यक न हो।

20. रक्तदान करें और जीवन बचायें। जीवन रक्षक बनिये– रक्तदान कीजिये। एक ईकाई रक्तदान से बचा सकती है किसी की जान। उपरोक्त मान्यताओं पर 'हम, आप और सभी' रक्तदान कर सकते हैं। अतः जिम्मेदार बनिए।

21. इस क्षेत्र में भारतीय रेड क्रास का महत्वपूर्ण योगदान है। उनकी सेवाएं विशिष्ट एवं सराहनीय हैं।

क्या आप जानते हैं?

1. रक्त का कोई विकल्प (substitute) नहीं है।

2. रक्त किसी भी प्रयोगशाला में नहीं बनाया जा सकता।

3. यह केवल मानव व्यक्तियों द्वारा ही दान किया जा सकता है।

4. अगर प्रत्येक व्यक्ति रक्तदान करना अपना व्यक्तिगत जिम्मेदारी समझता है, तो बीमार तथा घायल व्यक्ति बचाए जा सकते हैं।

5. रक्तदाता के रक्त का पुनः स्थापन, रक्तदान के तुरन्त पश्चात् प्रारम्भ हो जाता है।

6. रक्त के घटकों की पूर्ति दो सप्ताह में हो जाती है।

7. रक्तदान की महत्ता किसी भी व्यक्ति को तब महसूस होती है जब वह मरीज या घायल व्यक्ति के लिए इच्छित ब्लड ग्रुप का रक्त लेने हेतु दर–दर भटकता है।

8. रक्तदान शिविर का आयोजन करने के लिए संपर्क करें– vbd.dsacs@gmail.com

9. प्रतिवर्ष 14 जून को विश्व रक्तदान दिवस मनाया जाता है।

10. आज के हालात में सर्वथा आवश्यक है कि लोग रक्तदान में स्वेच्छा से आगे बढ़कर हिस्सा लें, क्योंकि यह रक्त की आपूर्ति का सुनिश्चित तरीका है।

○○○

390 HRD / 2018—16

13

हींग : रसोई की शान

डॉ. नवीन कुमार बौहरा

प्रकृति ने मानव के कल्याण के लिए अनेक वनस्पतियों का सृजन किया है जिसका उपयोग कर मानव अपने जीवन में स्वस्थ एवं आनन्दमय बना सकता है, वनस्पतियों के रूप में प्रकृति ने अनेक औषधियां मानव जीवन की सुरक्षा को सुनिश्चित करने के लिए उपलब्ध करा दी है, जिनका दैनिक जीवन से अटूट संबंध है। हम जो मसाले खाते हैं या साग–भाजी का प्रयोग भोजन में करते हैं, वास्तव में उनमें अदृश्य औषधियां हमारे शरीर का पोषण करती हैं। संसार के बड़े से बड़े वैज्ञानिकों ने भी इस संबंध में तथ्यात्मक रिपोर्ट दी है।

हींग भी ऐसा ही एक मसाला है जो प्रायः सभी रसोईघरों की शान है। "भावप्रकाश" गंथ में इसे कृमिघ्न (कृमि नाशक), चरक संहिता नामक गंथ में रत्नाकार अर्थात् पेट के वातनाशक माना है।

हींग का वानस्पतिक नाम 'फेरूला ऐसाफोइटिडा' है। फेरूला ऐसाफोईटिडा एक लिंगी, बहुवर्षीय झाड़ी है जो (एपिएसी) कुल का पादप है। यह दो मीटर तक ऊँचा एवं 30 से 40 सेमी मोटी पत्तियों से घिरा हो सकता है। इसका पुष्पित तना 8 से 10 फीट तक ऊँचा एवं 10 सेमी तक मोटा हो सकता है। इसके हरे–पीले पुष्प होते हैं। तने में मुख्यतः रेजिन गम होता है तथा इसकी जड़ें भी मोटी एवं मासल होती हैं जो तने की तरह ही रेजिन स्रावित करती हैं। इस पादप के सभी भागों से एक विशिष्ट तीक्ष्ण गंध आती है।

इसका असली रूप इसका दूध है। इसका अंग्रेजी नाम ASA फारसी शब्द AZA का लैटिनी रूप है। जिसका अर्थ है रेजिन तथा फोइटिडिश का अर्थ है तीक्ष्ण गंध। इसे मराठी एवं हिन्दी में हींग, बंगाली में हिनू, कन्नड़ में इन्गू, तेलुगु में इनगुआ एवं तमिल में पेरूणाकायम के नाम से जाना जाता है। इसे भगवान का खाद्य, डिविल डंग, हिंदी हींगू, इंन्गू, कायम एवं टिंग आदि नामों से जाना जाता है।

14वीं शताब्दी में मलयालम में इसे रामाडोम कहा जाता था तथा इसे बेचने वाले को रामाडोर कहते थे। फ्रेंच में इसे मर्डी द डिएबल (Merde

Du Diable) एवं डेविल फेसेस (Devils Faeces) तथा अंग्रेजी में कभी–कभी इसे डेविल डंग (Devil Dung) कहते हैं। जर्मन में टयूफेल्सड्रेक (Teufelsdreck), स्वीडिश में डाईवेलस्ट्रेक (Dybelstrack) डच भाषा में डुईवेल्सड्रेक (Duivelsdrek), अफ्रीका में डुईवेल्सड्रेक (Duielsdrek), फिनिश भाषा में पीरूणपास्का (Pirunpaska), या पीरूणपीहका (Pirunpihka), तथा टर्किश भाषा में सैटेनटेरसी (Seytantersi), सैटेनबोकु (Seytamnboku), अथवा सैटेनओटू (Seytanotu) के नाम से जाना जाता है। इसका उल्लेख विभिन्न कहानियों एवं किवदंतियों में औषधीय गुणों के रूप में मिलता है। इसका वर्णन जेविश साहित्य, पर्शिया एवं यूरोप में भी मिलता है।

फेरूला की कई प्रजातियां मूलतः ईरान के मरूस्थल एवं अफगानिस्तान की पहाड़ियों में मिलती है तथा इससे मिलने वाले भारतीय क्षेत्रों में उसकी खेती भी की जाती है। फेरूला की अनेक जातियाँ पूर्वी मैडीटेरियन से सेन्ट्रल एशिया तक मिलती है। इसकी मुख्य प्रजातियों में फेरूला एसाफोइटिडा, फेरूला ऐलिएसिया, फेरूला फोइटिडा एवं फेरूला नारथेकस प्रमुख है। जो सेन्ट्रल एशिया, ईरान से अफगानिस्तान तक मिलती है।

हींग, फेरूला की कई जातियों के मूसला जड़ तंत्र या राइजोम से निकलने वाला सूखा लेटेक्स (ओलियोरेजीन गोंद) है। नाम के अनुसार फेरूला ऐसाफोइटिडा की तीक्ष्ण गंध होती है परन्तु सब्जी में डालने पर इनकी सुगंध आती है।

संगठन– एक प्ररूपी ऐसाफोईटिडा में 40 से 60 प्रतिश्त रेजिन, 25 प्रतिशत आंतरिक गोंद, 10 से 17 प्रतिशत वाष्पशील तेल एवं 1.5 से 10 प्रतिशत तक राख होती है। इसके रेजिन भाग में अनेक महत्वपूर्ण रसायन पाये जाते हैं।

खेती–यह बहुवर्षीय पादप है जो 3.6 मीटर तक ऊँचा हो सकता है। इसका असली रूप इसका दूध है। चार वर्ष बाद इस पादप से रेजिन निकाला जा सकता है। झाड़दार पौधे की जड़ सूखाकर थोड़ा ऊपर तने के पास से, पौधा काट देते हैं। इस हेतु तने में जड़ के पास कट लगाते हैं। उसमें से गाढ़ा रस निकलता है इस निकलने वाले दूध या द्रव को एकत्रित करते हैं। उस हिस्से को बर्तन से ढॉप देते हैं ताकि धूल–मिट्टी न लगे। यह तुरन्त ही ठोस बन जाता है। ताजा रेजिन सफेद होता है जो पहले गुलाबी एवं अन्त में लाल भूरे रंग का हो जाता है। कुछ दिन रस खुरच लेते हैं। इस प्रकार तीन माह तक थोड़े–थोड़े फासले से तना काटते रहते हैं। गोंद के रूप में रस उतारते रहते हैं।

आमतौर पर एक पौधे से 250 से 300 ग्राम हींग मिल जाती है। काबुली या खुरासानी हींग उत्तम मानी गई है। यह अफगानिस्तान से आती है। पंजाब और कश्मीर की देशी हींग उच्च कोटि की नहीं होती है।

हींग की पहचानः

1. हींग को पानी में डालने पर सम्पूर्ण हींग घुल जाती है व पानी की रंगत दूधिया हो जाती है, तबसे दूसरे पात्र में डाल देते हैं। यदि पैदें पर रेत मिट्टी है तो हींग मिलावटी है अन्यथा शुद्ध है।

2. दियासलाई से जलाने पर पूर्ण रूप से हींग जल जाये तो असली अन्यथा अशुद्ध है।

3. शुद्ध हींग सामान्यतः दानेदार होती है। ढेले या रॉल के रूप में नकली होती है।

हींग के उपयोगः

1. अतिसार में– अत्याधिक दस्त लगना, हैजा या अतिसार का संकेत है। इसमें हींग, जायफल, कालोमिर्च व केसर 5–5 ग्राम लेकर गौ दूध में पीसकर छोटी–छोटी गोलियां बना ले तथा मौसम के अनुसार ठंडे या गर्म पानी, चावलों की मांड या मट्ठे के साथ 3–3 घंटे 1–1 गोली ले, आराम मिलेगा। "निघण्टु रत्नाकर" में इसी कारण इसे मल स्तंभक माना गया है।

2. अपच – हाजमा बिगड़ने पर कालीमिर्च (5 ग्राम), इलायची (5 ग्राम), सुहागा भुना हुआ (5 ग्राम), नींबू का सत (10 ग्राम), सेंधा नमक (15 ग्राम) को मिलाकर पीस ले। अब एक ग्राम पीपरमेंट डालकर शीशी में ढक्कन लगाकर रख लें। इसे चूर्ण के रूप में ले। अपच रोग दूर होता है।

3. उल्टी होने पर – हींग को घी में भून लें व अजवाइन, काला नमक व कालीमिर्च मिलाकर पीस ले। अब इस चूर्ण की 2 ग्राम मात्रा पानी के साथ लें।

4. औरतों के कमर दर्द में – 3 ग्राम हींग, दस ग्राम कालीमिर्च, 10 ग्राम सोंठ व पीपल को पीसकर छान ले। अब 50 ग्राम काले तिल भूनकर, 10 ग्राम ब्राह्मी बूटी के साथ काढ़ा बना ले। यह 3–5 ग्राम रोज ले। कमर दर्द में आराम पहुँचेगा।

5. नेत्र रोगों में – नेत्र पर गर्मी, खुश्की, थकान होने पर गाय का 250 ग्राम घी व ताजा 250 ग्राम गौ मूत्र लेकर, 3–3 ग्राम हींग, हल्दी सहजन के बीज, गंधक व दस दाने कालीमिर्च डालकर खरल कर ले। अब इसका परांठा बना ले व इसको काला पड़ने तक तलें। अब घी को निथार लें। इसे नाक के नथुनों में एवं क्रीम की तरह कनपटी पर मले। एक सप्ताह में नेत्र रोग दूर होते हैं।

इसका उपयोग खाद्य पदार्थों में पाचक के रूप में छौंक लगाकर या अचार में भी किया जाता है। शुद्ध हींग की गंध इतनी तेज होती है कि खुले में रखने पर यह अन्य मसालों पर अपना प्रभाव डाल देता है। प्याज लहसुन आदि न खाने वाले हिन्दुओं विशेषतः जैन धर्म के लोग इसका छौंक के रूप में उपयोग करते हैं। यह राजस्थान गुजरात, कर्नाटक, आंध्रप्रदेश, तमिलनाडू एवं महाराष्ट्र में बहुतायत से प्रयुक्त होता है।

इसका प्रयोग गले में सूक्ष्मजीवों की वृद्धि रोकने में, पाचक के रूप में तथा अन्य रोगों में औषधि के रूप में भी किया जाता है। इसकी जड़ों में विषाणु रोधी गुण होने के कारण यह इन्फ्लूएन्जा में प्रयुक्त किया जाता है। यह अस्थमा एवं ब्रोकाइटिस में भी औषधि के रूप में उपयोगी है। आयुर्वेद में वात एवं कफ में इसे उपयोगी माना गया है बच्चों को एवं गर्भवती महिलाओं को इसका सेवन नहीं करना चाहिए।

इस प्रकार कान दर्द, कूकर खांसी व खट्टी डकार में हींग उपयोगी है। इसका सेवन सोच

समझकर ही करना चाहिए क्योंकि हींग एक तरफ शरीर में आकर्षण लाती है परन्तु दूसरी ओर शरीर में गर्मी करती है। यह पाचन में सहायक है एवं मूत्र रोगों, पित्त के रोगों में भी उपयोगी है। परन्तु इसका सेवन लम्बे समय तक नहीं करना चाहिए। हींग फेफड़ों के दर्द, कब्ज व नजला जुकाम जैसे कई रोगों में उपयोगी है। फेफड़े के रोगों में इसे सर्वसुलभ एवं रामबाण औषधि माना गया है। हींग में एक वाष्पशील तेल होता है जो श्वासनलिका को निर्मल करता है तथा आवाज में जादू जगाता है।

○○○

390 HRD / 2018—17

390 HRD / 2018—17

लेखक परिचय

1. श्री आशीष प्रसाद – फ्रैड्स बुक डिपो, यूनिवर्सिटी गेट श्री नगर गढ़वाल
2. श्री सतीश चन्द्र सक्सेना – BB35F जनकपुरी नई दिल्ली 110058
3. डॉ. प्रेम चन्द्र श्रीवास्तव – "अनुकम्पा" Y2 C 11/5 त्रिवेणीपुरम, झूंसी इलाहाबाद – 211019
4. डॉ. अजय कुमार चतुर्वेदी – 26 काबेरी एन्क्लेव फेज द्वितीय, स्वर्ण जयन्ती नगर रामघाट रोड, अलीगढ. – 20200
5. आनंद लक्ष्मी एन. एवं रामकृष्ण महापात्रा – डायरेक्टरेट ऑफ पोल्ट्री रिसर्च, राजेन्द्र नगर, हैदराबाद 500030
6. डॉ. वेंकटेश भारद्वाज – गोविन्द बल्लभ पंत कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय पंत नगर – 263145 उत्तराखंड
7. डॉ. झिलमिल गुप्ता – विभागाध्यक्ष, पादप रोगविज्ञान विभाग राजा बलवंत सिंह कालेज, बिचपुरी, आगरा
8. दिनेश चन्द्र बहुखंडी – मकान न. 146 –A उत्तम विहार, उत्तम नगर नई दिल्ली 120059
9. डॉ. दिलीप कुमार मौर्य – D-53 /100 छोटी गैवी लक्सा रोड़ वाराणसी– 221010
10. डॉ. दीपक कोहली – 5/104 विपुल खंड, गोमती नगर, लखनऊ।
11. कैलाश नाथ गुप्त – D-1A/115 जनकपुरी, नई दिल्ली 110058
12. नवीन कुमार बौहरा – प्लाट न. 389 गली न. 10 मिल्कमेन कालोनी, पाली रोड, जोधपुर, राजस्थान

आयोग के प्रकाशन

बृहत पारिभाषित शब्द–संग्रह

शीर्षक	पी.ई.डी.नं.	मूल्य
बृहत् पारिभाषिक शब्द–संग्रहः विज्ञान खंड 1, 2 (अंग्रेजी–हिंदी) (पुनर्मुद्रण 1994, पृ. 2058)	713	174.00
बृहत् पारिभाषिक शब्द–संग्रहः विज्ञान खंड 1, 2 (अंग्रेजी–हिंदी) (पुनर्मुद्रण 1994, पृ. 2058)	684	150.00
बृहत् पारिभाषिक शब्द–संग्रहः मानविकी और सामाजिक खंड 1,2 (अंग्रेजी–हिंदी) (पुनर्मुद्रण 1992, पृ. 1297)	706	292.00
बृहत् पारिभाषिक शब्द–संग्रहः मानविकी और सामाजिक विज्ञान (हिंदी–अंग्रेजी) (1997, पृ. 650)	758	350.00
बृहत् पारिभाषिक शब्द–संग्रहः आयुर्विज्ञान, कृषि एवं इंजीनियर (हिंदी–अंग्रेजी) (1986, पृ. 240)	568	48.00
बृहत् पारिभाषिक शब्द–संग्रहः कृषि विज्ञान (अंग्रेजी–हिंदी) (पुनर्मुद्रण 1991, पृ. 223)	695	278.00
बृहत् पारिभाषिक शब्द–संग्रहः मुद्रण इंजीनियरी (अंग्रेजी–हिंदी) (1991, पृ. 104)	692	48.50
बृहत् पारिभाषिक शब्द–संग्रहः आयुर्विज्ञान (अंग्रेजी–हिंदी) (2014, पृ. 693)	698	239.00
बृहत् पारिभाषिक शब्द–संग्रहः पषुचिकित्सा विज्ञान (अंग्रेजी–हिंदी) (1994, पृ. 172)	718	82.00
बृहत् पारिभाषिक शब्द–संग्रहः विज्ञान (हिंदी–अंग्रेजी) (द्वितीय संस्करण 1997, पृ. 819)	757	236.00
बृहत् पारिभाषिक शब्द–संग्रहः इंजीनियरी (सिविल, विद्युत, यांत्रिकी) (अंग्रेजी–हिंदी) (पुनर्मुद्रण 1999, पृ. 566)	692	340.00
बृहत् पारिभाषिक शब्द–संग्रहः प्राणिविज्ञान (अंग्रेजी–हिंदी) (2003, पृ. 526)	885	311.00

विषयवार शब्द–संग्रह / शब्दावली / परिभाषा कोश

अर्थशास्त्र

अर्थमिति परिभाषा कोश (अंग्रेजी–हिंदी) (1980, पृ. 245)	499	17.00
अर्थशास्त्र परिभाषा कोश (अंग्रेजी–हिंदी) (1989, पृ. 232)	665	117.00
अर्थशास्त्रशब्द–संग्रह (अंग्रेजी–बोडो) (2003, पृ. 110)	843	185.00
अर्थशास्त्र शब्द–संग्रह (अंग्रेजी–ओडिया) (2003, पृ. 144)	824	183.00
अर्थशास्त्र शिक्षार्थी शब्द–संग्रह (अंग्रेजी–हिंदी) (2010, पृ. 60)	918	137.00
अर्थशास्त्र मूलभूत शब्दावली (अंग्रेजी–हिंदी) (2010, पृ. 139)	––	निःशुल्क

आयुर्विज्ञान

आयुर्विज्ञान शब्द–संग्रह (अंग्रेजी–ओडिया) (2002, पृ. 488)	805	450.00
आयुर्विज्ञान के सामान्य शब्द एवं वाक्यांश (अंग्रेजी–तमिल–हिंदी) (2002, पृ. 333)	812	279.00
आयुर्विज्ञान परिभाषा कोश (शल्य विज्ञान) (अंग्रेजी–हिंदी) (2004, पृ. 407)	8471	338.00
आयुर्विज्ञान मूलभूत शब्दावली (अंग्रेजी–ओडिया) (2005, पृ. 613)	––	निः शुल्क
आयुर्विज्ञान प्रतिकूल प्रतिक्रिया शब्दावली (2009, पृ. 196)	907	273.00
आयुर्वेद परिभाषा कोष (संस्कृत–अंग्रेजी) (2010 पृ. 207)	925	260.00
आयुर्विज्ञान शब्द–संग्रह (अंग्रेजी–हिंदी) (2010, पृ. 462)	927	517.00
रोग निदान एवं विकृति शब्द–संग्रह (अंग्रेजी–हिंदी) (2011, पृ. 419)	926	401.00
आयुर्विज्ञान शब्द–संग्रह (अंग्रेजी–हिंदी) (पृ. 462)	943	मुद्रणाधीन

इंजीनियरी

सिविल इंजीनियरी परिभाषा कोष (अंग्रेजी–हिंदी) (1991, पृ. 112)	709	61.00
रासायनिक इंजीनियरी शब्द–संग्रह (अंग्रेजी–हिंदी) (1996, पृ. 167)	739	51.00
विद्युत इंजीनियरी परिभाषा कोश (अंग्रेजी–हिंदी) (1998, पृ. 156)	773	81.00
यांत्रिक इंजीनियरी परिभाषा कोश (अंग्रेजी–हिंदी) (1999, पृ. 135)	696	94.00
पर्यावरण इंजीनियरी मूलभूत शब्दावली (अंग्रेजी–हिंदी) (2001, पृ. 88)	––	निः शुल्क
यांत्रिक इंजीनियरी मूलभूत शब्दावली (अंग्रेजी–हिंदी) (2008, पृ. 134)	––	निः शुल्क

इतिहास

इतिहास परिभाषा कोश (अंग्रेजी–हिंदी) (1982, पृ. 297)	548	20.50
इतिहास शब्द–संग्रह (अंग्रेजी–ओडिया) (2002, पृ. 300)	813	404.00

कंप्यूटर विज्ञान एवं सूचना प्रौद्योगिकी

कंप्यूटर विज्ञान परिभाषा कोष (अंग्रेजी–हिंदी) (1992, पृ. 144)	702	102.00
कंप्यूटर विज्ञान शब्दावली (अंग्रेजी–हिंदी) (1995, पृ. 147)	714	57.00
कंप्यूटर विज्ञान की मूलभूत शब्दावली (अंग्रेजी–हिंदी) (1996, पृ. 115)	––	निः शुल्क
दूरसंचार की मूलभूत शब्दावली (अंग्रेजी–हिंदी) (2001, पृ. 191)	––	निः शुल्क
कंप्यूटर विज्ञान शब्द–संग्रह (अंग्रेजी–बोडो) (2002, पृ. 121)	836	78.00
सूचना प्रौद्योगिकी शब्द–संग्रह (अंग्रेजी–हिंदी) (2005, पृ. 393)	884	231.00
प्रसारण तकनीकी शब्दावली (अंग्रेजी–हिंदी) (2009, पृ. 148)	905	310.00

कला और संगीत

पाश्चात्य संगीत परिभाषा कोश (अंग्रेजी–हिंदी) (1996, पृ. 85)	733	50.00
नाट्यशास्त्र, फिल्म एवं टेलीविजन परिभाषा कोश (अंग्रेजी–हिंदी) (2006, पृ. 254)	––	75.00
नाट्यषास्त्र, फिल्म एवं टेलीविजन शब्दावली (अंग्रेजी–हिंदी) (2006, पृ. 171)	889	75.00

कृषि

रेशम विज्ञान शब्द–संग्रह (अंग्रेजी–हिंदी) (1996, पृ. 85)	733	50.00
पादप आनुवंशिकी परिभाषा कोश (अंग्रेजी–हिंदी) (1996, पृ. 185)	––	75.00
कृषि कीट विज्ञान परिभाषा कोश (अंग्रेजी–हिंदी) (1997, पृ. 213)	751	75.00
मृदा विज्ञान परिभाषा कोश (अंग्रेजी–हिंदी) (1997, पृ. 149)	756	77.00
वानिकी शब्द–संग्रह (अंग्रेजी–हिंदी) (2007, पृ. 437)	896	447.00
कृषि विज्ञान मूलभूत शब्दावली (अंग्रेजी–हिंदी) (2008, पृ. 127)	––	निःशुल्क

गणित

गणित शब्द–संग्रह (अंग्रेजी–हिंदी) (1996, पृ. 357)	728	143.00
गणित की मूलभूत शब्दावली (अंग्रेजी–हिंदी) (1997, पृ. 135)	––	निःशुल्क
गणित परिभाषा कोश (अंग्रेजी–हिंदी) (2002, पृ. 333)	822	203.00

390 HRD / 2018–18

संख्यिकी परिभाषा कोश (अंग्रेजी–हिंदी) Out of Stock	––	18.00
गणित शब्द–संग्रह (अंग्रेजी–ओडिया) (2002, पृ. 105)	814	189.00
गणित शब्द–संग्रह (अंग्रेजी–बोडो) (2003, पृ. 152)	852	335.00

गुणता नियंत्रण

गुणता नियंत्रण शब्दावली (अंग्रेजी–हिंदी तथा हिंदी अंग्रेजी) (1996, पृ. 67)	729	38.00

गृहविज्ञान

गृह विज्ञान शब्द–संग्रह (अंग्रेजी–हिंदी) (1996, पृ. 144)	750	38.00
गृह विज्ञान शब्द–संग्रह शब्दावली (अंग्रेजी–हिंदी) (2009, पृ. 148)	––	निःशुल्क

जीव विज्ञान

सांस्कृतिक नृविज्ञान परिभाषा कोश (अंग्रेजी–हिंदी) (1977, पृ. 287)	497	24.00
पुरावनस्पतिविज्ञान परिभाषा कोश (अंग्रेजी–हिंदी) (1990, पृ. 161)	691	80.50
वनस्पतिविज्ञान परिभाषा कोश (संशोधित एवं परिवर्धित संस्करण) (अंग्रेजी–हिंदी) (1996, पृ. 204)	752	75.00
पादप आनुवंशिक परिभाषा कोश (अंग्रेजी–हिंदी) (1997, पृ. 185)	753	75.00
सूक्ष्मजैविकी परिभाषा कोश (अंग्रेजी–हिंदी) (1997, पृ. 193)	755	45.00
कोषिका जैविकी शब्द–संग्रह (अंग्रेजी–हिंदी) (1997, पृ. 197)	742	62.00
पादप रोग विज्ञान परिभाषा कोश (अंग्रेजी–हिंदी) (1998, पृ. 138)	768	75.00
वनस्पतिविज्ञान शब्द–संग्रह (अंग्रेजी–हिंदी) (1998, पृ. 266)	760	86.00
सूत्रकृमि विज्ञान परिभाषा कोश (अंग्रेजी–हिंदी) (2000, पृ. 263)	785	125.00
कोशिका जैविकी परिभाषा कोश (अंग्रेजी–हिंदी) (2000, पृ. 321)	790	121.00
कोषिका तथा अणुजैविकी शब्द–संग्रह (अंग्रेजी–हिंदी) (2001, पृ. 316)	796	348.00
प्राणिविज्ञान परिभाषा कोश (अंग्रेजी–हिंदी) (2001, पृ. 540)	803	216.00
प्राणिविज्ञान शब्द–संग्रह (अंग्रेजी–ओडिया) (2002, पृ. 204)	810	205.00
वनस्पतिविज्ञान शब्द–संग्रह (अंग्रेजी–ओडिया) (2002, पृ. 185)	842	208.00
पर्यावरण विज्ञान शब्द–संग्रह (अंग्रेजी–हिंदी) (2004, पृ. 429)	870	381.00
प्राणिविज्ञान शब्द–संग्रह (अंग्रेजी–हिंदी–बोडो) (2007, पृ. 184)	897	417.00
प्राणिविज्ञान मूलभूत शब्दावली (अंग्रेजी–हिंदी) (2008, पृ. 247)	––	निःशुल्क

पर्यावरण विज्ञान मूलभूत शब्दावली (अंग्रेजी–हिंदी) (2009, पृ. 160)	––	निःशुल्क
वनस्पतिविज्ञान मूलभूत शब्दावली (अंग्रेजी–हिंदी) (2009, पृ. 162)	––	निःशुल्क
जीवविज्ञान शिक्षार्थी शब्द–संग्रह (अंग्रेजी–हिंदी) (2010, पृ. 294)	922	212.00
पर्यावरण विज्ञान परिभाषा कोश (अंग्रेजी–हिंदी) (2012, पृ. 348)	938	मुद्रणाधीन
दर्शनशास्त्र		
भारतीय दर्शन परिभाषा कोश खंड–1 (अंग्रेजी–हिंदी) (1998, पृ. 170)	775	151.00
भारतीय दर्शन परिभाषा कोश खंड–2 (अंग्रेजी–हिंदी) (1999, पृ. 230)	779	124.00
भारतीय दर्शन परिभाषा कोश खंड–3 (अंग्रेजी–हिंदी) (1999, पृ. 340)	780	136.00
दर्शन शास्त्र शब्द–संग्रह (अंग्रेजी–ओडिया) (2002, पृ. 160)	821	61.00
दर्शन शास्त्र परिभाषा कोश (अंग्रेजी–हिंदी) (2003, पृ. 331)	850	198.00
पत्रकारिता		
पत्रकारिता परिभाषा कोश (अंग्रेजी–हिंदी) (1990, पृ. 164)	681	87.00
पत्रकारिता एवं मुद्रण शब्दावली (अंग्रेजी–हिंदी) (1998, पृ. 184)	767	12.25
पुरात्व विज्ञान		
पुरातत्व विज्ञान परिभाषा कोश (अंग्रेजी–हिंदी) (1994, पृ. 453)	711	509.00
पुरातत्व और वास्तुकला की मूलभूत शब्दावली (अंग्रेजी–हिंदी) (2001, पृ. 68)	––	निःशुल्क
पुरातत्व विज्ञान शब्द–संग्रह (अंग्रेजी–ओडिया) (2003)	––	157.00
पुरातत्व विज्ञान शब्द–संग्रह (अंग्रेजी–बोडो) (2003, पृ. 78)	846	157.00
पुस्तकालय एवं सूचना विज्ञान परिभाषा कोश (अंग्रेजी–हिंदी) (2013, पृ. 271)	593	49.00
पुस्तकालय एवं सूचना विज्ञान शब्दावली (अंग्रेजी–हिंदी) (2010, पृ. 220)	912	375.00
प्रशासन		
प्रशासनिक शब्दावली (अंग्रेजी–ओडिया) (2002, पृ. 400)	840	390.00
प्रशासनिक शब्दावली (अंग्रेजी–हिंदी–बोडो) (2007, पृ. 549)	899	720.00
प्रशासनिक शब्दावली (अंग्रेजी–हिंदी) (संशोधित तथा परिवर्धित संस्करण 2008,पृ.511)	900	20.00
मूलभूत प्रशासनिक शब्दावली (अंग्रेजी–हिंदी) (2008, पृ. 202)	––	निःशुल्क
प्रशासनिक शब्दावली (अंग्रेजी–हिंदी) (पूनर्मुद्रण 2010, पृ. 479)	935	20.00

प्रबंध विज्ञान		
प्रबंध विज्ञान परिभाषा कोश (अंग्रेजी–हिंदी) (1991, पृ. 191)	700	170.00
मनोविज्ञान		
मनोविज्ञान शब्दावली (अंग्रेजी–हिंदी) (2000, पृ. 116)	794	247.00
मनोविज्ञान मूलभूत शब्दावली (अंग्रेजी–हिंदी) (2001, पृ. 86)	468	निःशुल्क
मनोविज्ञान शब्द–संग्रह (अंग्रेजी–ओडिया) (2002, पृ. 470)	820	108.00
मनोविज्ञान परिभाषा कोश (अंग्रेजी–हिंदी) (2013, पृ. 533)	941	मुद्रणाधीन
भाषा विज्ञान		
भाषा विज्ञान परिभाषा कोश खंड–1 (अंग्रेजी–हिंदी) (1989, पृ. 212)	664	89.00
भाषा विज्ञान शब्दावली (अंग्रेजी–हिंदी तथा हिंदी–अंग्रेजी) (1992, पृ. 249)	707	113.00
भाषा विज्ञान परिभाषा कोश खंड–2 (अंग्रेजी–हिंदी) (1998, पृ. 295)	764	59.00
भूगोल		
मानचित्र विज्ञान परिभाषा कोश (अंग्रेजी–हिंदी) (1990, पृ. 361)	663	231.00
भूगोल शब्द–संग्रह (अंग्रेजी–हिंदी) (1996, पृ. 369)	736	200.00
भूगोल मूलभूत शब्दावली (अंग्रेजी–हिंदी) (1997, पृ. 156)	––	निःशुल्क
भूगोल परिभाषा कोश (अंग्रेजी–हिंदी) स्टॉक में नहीं	––	10.00
मानव भूगोल परिभाषा कोश (अंग्रेजी–हिंदी) स्टॉक में नहीं	––	18.00
प्राकृतिक विपदा शब्दावली (अंग्रेजी–हिंदी) (2000, पृ. 202)	791	17.00
जलवायु विज्ञान शब्दावली (अंग्रेजी–हिंदी) (2002, पृ. 204)	801	131.00
भूगोल शब्द–संग्रह (अंग्रेजी–बोडो) (2002, पृ. 426)	833	515.00
भूगोल शब्द–संग्रह (अंग्रेजी–ओडिया) (2003)	––	515.00
भूविज्ञान		
पेट्रोलियम प्रौद्योगिकी परिभाषा कोश (अंग्रेजी–हिंदी) (1992, पृ. 188)	733	173.00
शैलविज्ञान परिभाषा कोष (अंग्रेजी–हिंदी) (1993, पृ. 168)	708	153.00
भूविज्ञान शब्द–संग्रह (अंग्रेजी–हिंदी) (1996, पृ. 328)	727	88.00
भूविज्ञान परिभाषा कोश (अंग्रेजी–हिंदी) (1996, पृ. 284)	726	63.00
खनन एवं भूविज्ञान शब्द–संग्रह (अंग्रेजी–हिंदी) (1996, पृ. 128)	737	32.00
संरचनात्मक भूविज्ञान एवं विवर्तनिकी शब्द–संग्रह (अंग्रेजी–हिंदी) (1996, पृ. 48)	734	15.00

भूविज्ञान की मूलभूत शब्दावली (अंग्रेजी–हिंदी) (1997, पृ. 141)	––	निःशुल्क
संरचनात्मक भूविज्ञान परिभाषा कोष (अंग्रेजी–हिंदी) (1998, पृ. 60)	765	13.50
कोयला उद्योग की मूलभूत शब्दावली (अंग्रेजी–हिंदी) (1999, पृ. 64)	––	निःशुल्क
आर्थिक भूविज्ञान शब्द–संग्रह (अंग्रेजी–हिंदी) (2002, पृ. 70)	829	75.00
भूभौतिक शब्दावली (अंग्रेजी–हिंदी) (2002, पृ. 60)	830	67.00
शैलविज्ञान शब्द–संग्रह (अंग्रेजी–हिंदी) (2002, पृ. 185)	729	82.00
खनिज विज्ञान शब्दावली (अंग्रेजी–हिंदी) (2002, पृ. 174)	818	130.00
अनुप्रयुक्त भूविज्ञान शब्द–संग्रह (अंग्रेजी–हिंदी) (2002, पृ. 155)	817	115.00
संरचनात्मक भूविज्ञान शब्दावली (अंग्रेजी–हिंदी) (2002, पृ. 69)	826	73.00
जीवाष्म विज्ञान शब्दावली (अंग्रेजी–हिंदी) (2002, पृ. 181)	827	129.00
भूविज्ञान शब्द–संग्रह (अंग्रेजी–ओडिया) (2003)	827	129.00
भूविज्ञान शब्द–संग्रह (अंग्रेजी–बोडो) (2003, पृ. 284)	844	306.00
भौतिकी		
तरल यांत्रिकी परिभाषा कोश (अंग्रेजी–हिंदी) (1985, पृ. 76)	––	10.00
अंतरिक्ष विज्ञान शब्दावली (अंग्रेजी–हिंदी) (1994, पृ. 138)	717	45.00
भौतिकी शब्द–संग्रह (अंग्रेजी–हिंदी) (1996, पृ. 536)	741	119.00
भौतिकी परिभाषा कोश (अंग्रेजी–हिंदी) (2002, पृ. 953)	804	700.00
भौतिकी शब्द–संग्रह (अंग्रेजी–ओडिया) (2002, पृ. 163)	806	203.00
अर्धचालक शब्दावली (अंग्रेजी–हिंदी) (2006, पृ. 41)	890	140.00
इलेक्ट्रोनिकी शब्दावली (अंग्रेजी–हिंदी) (2007, पृ. 98)	893	349.00
भौतिकी शब्द–संग्रह (अंग्रेजी–हिंदी–बोडो) (2007, पृ. 322)	898	652.00
भौतिकी शिक्षार्थी शब्द–संग्रह (अंग्रेजी–हिंदी) (2010, पृ. 102)	917	219.00
भौतिकी मूलभूत शब्दावली (अंग्रेजी–हिंदी) (पुनर्मुद्रण 2010)	––	निःशुल्क
प्लाज्मा भौतिकी शब्द–संग्रह (अंग्रेजी–हिंदी) (2011, पृ. 187)	930	1589.00
रसायन		
उच्चतर रसायन परिभाषा कोश (अंग्रेजी–हिंदी) (1978, पृ. 557)	611	17.00
इस्पात एवं अलौह धातुकर्म शब्दावली (अंग्रेजी–हिंदी) (1988, पृ. 357) 661	55.00	
रसायन (कार्बनिक) परिभाषा कोश (अंग्रेजी–हिंदी) (1988, पृ. 272)	––	25.00
धातुकर्म परिभाषा कोश (अंग्रेजी–हिंदी) (1996, पृ. 449)	731	278.00

390 HRD / 2018—19

रसायन शब्द–संग्रह (अंग्रेजी–ओडिया) (2003, पृ. 112)	823	137.00
रसायन शब्द–संग्रह (अंग्रेजी–हिंदी) (2005, पृ. 918)	855	592.00
रसायन शिक्षार्थी शब्द–संग्रह (अंग्रेजी–हिंदी) (2009, पृ. 83)	920	84.00
रसायन मूलभूत शब्दावली (अंग्रेजी–हिंदी) (2009, पृ. 140)	––	निः शुल्क
राजनीति विज्ञान		
राजनीति विज्ञान परिभाषा कोश (अंग्रेजी–हिंदी) (1991, पृ. 356)	697	343.00
राजनीतिविज्ञान शब्द–संग्रह (अंग्रेजी–ओडिया) (2002, पृ. 121)	815	186.00
राजनीतिविज्ञान शब्द–संग्रह (अंग्रेजी–बोडो) (2003, पृ. 127)	847	211.00
रातनीति विज्ञान मूलभूत शब्दावली (अंग्रेजी–हिंदी) (2003, पृ. 67)	––	निः शुल्क
रक्षा		
समेकित रक्षा शब्दावली (अंग्रेजी–हिंदी) (1993, पृ. 343)	699	284.00
लोक प्रशासन शब्दावली (अंग्रेजी–हिंदी) (1995, पृ. 98)	721	52.00
वाणिज्य परिभाषा कोश (अंग्रेजी–हिंदी) (1978, पृ. 173)	498	24.00
वाणिज्य शब्दावली (अंग्रेजी–हिंदी) (1992, पृ. 172)	698	259.00
पूंजी बाजार एवं संबद्ध शब्दावली (अंग्रेजी–हिंदी) (2000, पृ. 185)	786	79.00
वाणिज्य शब्दावली (अंग्रेजी–ओडिया) (2002, पृ. 188)	811	162.00
वाणिज्य शब्दावली (अंग्रेजी–बोडो) (2002, पृ. 169)	835	194.00
वाणिज्य मूलभूत शब्दावली (अंग्रेजी–हिंदी) (2013, पृ. 134)	––	निःशुल्क
शिक्षा		
शिक्षा परिभाषा कोश खंड–1 (अंग्रेजी–हिंदी) (1978, पृ. 197)	493	13.50
शिक्षा परिभाषा कोश खंड–2 (अंग्रेजी–हिंदी) (1989, पृ. 205)	680	99.00
शिक्षा शब्द–संग्रह (अंग्रेजी–ओडिया) (2002, पृ. 151)	809	137.00
शिक्षा शब्द–संग्रह (अंग्रेजी–बोडो) (2002, पृ. 82)	834	97.00
समाज शास्त्र		
समाज कार्य परिभाषा कोश (अंग्रेजी–हिंदी) (1978, पृ. 183)	496	16.25
समाज शास्त्र परिभाषा कोश (अंग्रेजी–हिंदी) (1987, पृ. 199)	570	71.40
समाज शास्त्र शब्द–संग्रह (अंग्रेजी–ओडिया) (2003)	––	118.00
समाज शास्त्र शब्द–संग्रह (अंग्रेजी–बोडो) (2003, पृ. 74)	841	118.00

अन्य

अंतरराष्ट्रीय विधि परिभाषा कोश (अंग्रेजी–हिंदी) (1994, पृ. 295)	715	344.00
संसदीय कार्य शब्दावली (अंग्रेजी–हिंदी) (2008, पृ. 87)	901	130.00

संदर्भ–ग्रंथ

शीर्षक	पी.ई.डी.नं.	मूल्य
कृषिजन्य दुर्घटनाएं (1983, पृ. 212)		25.00
विष्व के प्रमुख धर्म (1984, पृ. 293)	571	118.00
विकास मनोविज्ञान भाग–1 Out of stock		40.00
विकास मनोविज्ञान भाग–2 Out of stock		30.00
बाल मनोविकास (1985, पृ. 252)	572	58.00
इलेक्ट्रॉनिक मापन (1986, पृ. 193)	587	31.00
सैन्य विज्ञान पाठ संग्रह (1987, पृ. 282)	601	100.00
द्रवचालित मषीन (1987, पृ. 579)	584	66.50
सूक्ष्म तरंग इंजीनियरी (1989, पृ. 335)	679	470.00
लोहीय तथा अलोहीय धातु (1989, पृ. 178)	666	68.00
लैटर प्रैस मुद्रण (1990, पृ. 407)	690	270.00
विष्व के प्रमुख दार्षनिक (1990, पृ. 696)	685	433.00
ठोस पदार्थ यांत्रिकी (1995, पृ. 452)	720	995.00
ऐतिहासिक नगर (1996, पृ. 145)	723	195.00
प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक नगर (1996, पृ. 121)	724	109.00
समुद्री यात्राएँ (1996, पृ. 90)	725	79.00
वैज्ञानिक शाब्दावली : अनुवाद एवं मौलिक लेखन (1996, पृ. 274)	730	34.00
विष्व दर्षन (1997, पृ. 115)	759	53.00
अपषिष्ट प्रबंधन (1998, पृ. 53)	776	115.00
कोयला : एक परिचय (1998, पृ. 122)	766	23.25
रत्न विज्ञान : एक परिचय (1999, पृ. 169)	762	40.00
पर्यावरणीय प्रदूषण : नियंत्रण तथा प्रबंधन (1998, पृ. 154)	766	23.25
वाहितमल एवं आपंक : उपयोग एवं प्रबंधन (1998, पृ. 65)	762	40.00
2 दूरीक एवं 2 मानकित समष्टियों में संपात एव स्थिर बिंदु समीकरणों के साधन (1999, पृ. 94)	783	68.00
भारत में प्याज एवं लहसन की खेती (1999, पृ. 137)	782	82.00
पशुओं से मनुष्यों में होने वाले रोग (1999, पृ. 208)	781	60.00

मृदा–उर्वरता (2000, पृ. 537)	798	410.00
ऊर्जा–संसाधन और संरक्षण (2000, पृ. 136)	798	105.00
पशुओं के कवकीय रोग, उनका उपचार एवं नियंत्रण (2000, पृ. 179)	789	93.00
पराज्यामितीय फलन (2000, पृ. 101)	793	90.00
भेड़ बकरियों के रोग एवं उनका नियंत्रण (2001, पृ. 671)	799	343.00
भारत में भैंस उत्पादन एवं प्रबंधन (2001, पृ. 485)	792	540.00
भारत में ऊसर भूमि एवं फसलोत्पादन (2001, पृ. 458)	795	559.00
सामाजिक एवं प्रक्षेत्र वानिकी (2001, पृ. 280)	796	54.00
समकालीन भारतीय दर्षन के कुछ मानववादी चिंतकः तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन (2002, पृ. 189)	806	153.00
स्वतंत्रता–पूर्व हिंदी में विज्ञान लेखन (2002, पृ. 157)	805	176.00
भारतीय कृषि का विकास (2002, पृ. 206)	831	155.00
कोयलाः एक परिचय (परिवर्धित संस्करण 2002, पृ. 157)		
भविष्य की आषाः हिंदी महासागर (2003, पृ. 219)	856	154.00
इस्पात परिचय (2003, पृ. 85)	853	146.00
जैव–प्रौद्योगिकी : अनुसंधान एवं विकास (2003, पृ. 82)	848	134.00
पृथ्वी : उद्‌भव और विकास (2003, पृ. 150)	849	86.00
इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्षी (2003, पृ. 87)	854	90.00
प्राकृतिक खेती (2004, पृ. 149)	867	167.00
हिंदी विज्ञान पत्रकारिता : कल, आज और कल (2004, पृ. 172)	869	112.00
मानसून पनकः भारतीय जलवायु का आधार (2004, पृ. 85)	870	112.00
हिंदी में स्वतंत्रता परवर्ती विज्ञान लेखन (2004, पृ. 219)	868	280.00
विष्व में प्रमुख धर्मों में धर्मसमभाव की अवधारणाः एक तुलनात्मक अध्ययन (2005, पृ. 465)	883	490.00
मैग्नेसाइट : एक भूवैज्ञानिक अध्ययन (2006, पृ. 253)	887	214.00
मृदा एवं पादप पोषाण (2006, पृ. 331)	885	367.00
नलकूप एवं भौमजल अभियंत्रिकी (2006, पृ. 334)	886	398.00
पादपों में कीट प्रतिरोध और समेकित कीट प्रबंधन (2006, पृ. 263)	891	367.00

390 HRD / 2018 — 20

पृथ्वी से पुरातत्व (Out of stock)		40.00
भारत के सात आश्चर्य (2009, पृ. 285)	900	335.00
पादप सुरक्षा के विविध आयाम (2010, पृ. 285)	916	360.00
पादप सुरक्षा एवं पौधशाला प्रबंधन (2010, पृ 231)	915	403.00
खनि आयोजन के सिद्‌धांत और अनुप्रयोग (पृ. 362)	940	मुद्रणाधीन
मृदा संरक्षण एवं प्रबंधन (पृ. 261)	943	मुद्रणाधीन

ग्राहक फार्म

सेवा में :

अध्यक्ष,

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग,

पश्चिम खंड–7 रामकृष्णपुरम,

नई दिल्ली–110066

महोदय,

कृपया मुझे **"विज्ञान गरिमा सिंधु"** (त्रैमासिक पत्रिका) का एक वर्ष के लिए ..... से ग्राहक बना लीजिए। मैं पत्रिका का वार्षिक सदस्यता शुल्क ..... रुपए, अध्यक्ष, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, नई दिल्ली के पक्ष में, नई दिल्ली स्थित अनुसूचित बैंक में देय डिमांड ड्राफ्ट सं. ..... दिनांक ..... द्वारा भेज रहा/रही हूं। कृपया पावती भिजवाएं।

नाम .....

पूरा पता .....

भवदीय

हस्ताक्षर

सदस्यता शुल्कः	भारतीय मुद्रा	विदेशी मुद्रा	
प्रति अंक (व्यक्तियों/संस्थाओं के लिए)	रु. 14.00	पौंड 1.64	डालर 4.84
वार्षिक (व्यक्तियों/संस्थाओं के लिए)	रु. 50.00	पौंड 5.83	डालर 18.00
प्रति अंक (विद्यार्थियों के लिए)	रु. ९.00	पौंड 0.93	डालर 10.80
वार्षिक (विद्यार्थियों के लिए)	रु. 30.00	पौंड 3.50	डालर 2.88

डिमांड ड्रफ्ट "अध्यक्ष, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग" के पक्ष में नई दिल्ली स्थित किसी भी

390 HRD / 2018—21

अनुसूचित बैंक में देय होना चाहिए। कृपया ड्राफ्ट के पीछे अपना नाम व पूरा पता भी लिखें। ड्राफ्ट 'एकाउंट पेई' होना चाहिए। यदि ग्राहक विद्यार्थी है तो कृपया निम्न प्रमाण–पत्र भी संलग्न करेः

विद्यार्थी–ग्राहक प्रमाण पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि कुमारी–श्रीमती–श्री ..... इस विद्यालय–महाविद्यालय/विश्वविद्यालय के .....विभाग का छात्र/की छात्रा है।

हस्ताक्षर

(प्राचार्य/विभागाध्यक्ष)

(मोहर)

बिक्री संबंधी नियम

1. आयोग के प्रकाशन, आयोग के बिक्री पटल तथा भारत सरकार के प्रकाशन विभाग के विभिन्न बिक्री पटलों पर उपलब्ध रहते हैं।
2. सभी प्रकाशनों की खरीद पर 25 प्रतिशत की छूट दी जाती है। कुछ पुराने प्रकाशनों पर 75 प्रतिशत तक भी छूट दी जाती है।
3. सभी तरह के आदेशों की प्राप्ति पर आयोग द्वारा इनवाइस जारी किया जाता है। अपेक्षित धनराशि का बैंक ड्राफ्ट या मनीऑर्डर अध्यक्ष, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, नई दिल्ली (Chairman, C.S.T.T., New Delhi) के नाम देय होना चाहिए। चेक स्वीकार्य नहीं होगा। अपेक्षित धनराशि प्राप्त होने के पश्चात् ही पुस्तकें भेजी जाती हैं।
4. चार किलोग्राम वजन तक की सभी पुस्तकें सामान्य डाक/अपंजीकृत पार्सल से भेजी जाती हैं। पुस्तकें भेजने पर पैकिंग तथा फॉवर्डिंग चार्ज नहीं लिया जाता है।
5. चार किलोग्राम से अधिक की सभी पुस्तकें रोड ट्रांसपोर्ट से भेजी जाती है तथा इन पर आने वाले सभी परिवहन–व्ययों का भुगतान मांगकर्ता द्वारा ही किया जाएगा।
6. पुस्तकें रोड ट्रांसपोर्ट से भेजने के बाद आयोग द्वारा मूल बिल्टी तत्काल पंजीकृत डाक से मांगकर्ता को भेज दी जाती है। यदि निर्धारित अवधि में पुस्तकों को ट्रांसपोर्ट कार्यालय से प्राप्त न किया गया तो उस स्थिति में लगने वाले सभी तरह के अतिरिक्त प्रभारों का भुगतान मांगकर्ता को ही करना होगा।
7. रोड ट्रांसपोर्ट से भेजी जाने वाली पुस्तकों पर न्यूनतम वजन का प्रभार अवश्य लगता है जो प्रत्येक दूरी के लिए अलग–अलग होता है। यदि संबंधित संस्था चाहे तो आयोग में सीधे ही भुगतान करके स्वयं पुस्तकें प्राप्त कर सकती है।
8. दिल्ली तथा उसके नजदीक के क्षेत्रों के आदेशों की पूर्ति डाक द्वारा संभव नहीं होगी। संबंधित संस्था को आयोग के बिक्री एकक में आवश्यक भुगतान करके पुस्तकें प्राप्त करनी होंगी।
9. पुस्तकों की पैंकिंग करते समय इस बात का ध्यान रखा जाता है कि मांगकर्ता को सभी पुस्तकें अच्छी स्थिति में प्राप्त हों। पुस्तकें सामान्य डाक/अपंजीकृत पार्सल/रोड ट्रांसपोर्ट से भेजी जाती हैं। यदि परिवहन में पुस्तकों को किसी भी तरह का नुकसान पहुंचता है तो उसका दायित्व आयोग पर नहीं होगा।
10. सामान्यतः बिल कटने के बाद आदेश में बदलाव या पुस्तकों की वापसी नहीं होगी। यदि क्रय राशि का समायोजन आवश्यक होगा तो राशि वापस नहीं की जाएगी। इस स्थिति में अन्य पुस्तकें ही दी जाएंगी।

प्रकाशन विभाग, भारत सरकार के बिक्री केंद्रों की सूची

क्र.सं.	पता
1.	**प्रकाशन नियंत्रक** प्रकाश–I विभाग, (शहरी मामले व रोजगार मंत्रालय) सिविल लाइन्स, दिल्ली – 110054
2.	**किताब महल** प्रकाशन विभाग, भारत सरकार बाबा खड़ग सिंह मार्ग, स्टेट एंपोरियम बिल्डिंग, यूनिट नं. 21, नई दिल्ली – 110001
3.	**पुस्तक डिपो** प्रकाशन विभाग, भारत सरकार के. एस. राय मार्ग, कोलकाता–700001
4.	**बिक्री काउंटर** प्रकाशन विभाग, भारत सरकार सी. जी. ओ. कॉम्प्लेक्स न्यू मेरीन लाइन्स, मुंबई – 400020
5.	**बिक्री काउंटर** प्रकाशन विभाग, उद्योग भवन गेट नं. 3, नई दिल्ली –110001
6.	**बिक्री काउंटर** प्रकाशन विभाग, भारत सरकार (लॉयर्स चैंबर) दिल्ली उच्च न्यायालय नई दिल्ली – 110003
7.	**बिक्री काउंटर** प्रकाशन विभाग संघ लोक सेवा आयोग, धौलपुर हाउस, नई दिल्ली – 110001

MGIPRRND—390 HRD / 2018—1,000 Copies.

© भारत सरकार
प्रकाशन नियंत्रक

विशेषांक 100 पी.सी.एस.टी.टी. (1–3) 2017
1000

Mobile App of Administrative Terms Glossary is now available in Google Play Store.

Step-1: Search CSTT • Step-2: Download • Step-3: Open to use

वैतश आयोग द्वारा प्रकाशित शब्दावलियाँ, परिभाषा-कोश मोबाईल ऐप तथा ई-पुस्तक के रूप में उपलब्ध होंगे।

प्रोफेसर अवनीश कुमार
अध्यक्ष

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
मानव संसाधन विकास मंत्रालय (उच्चतर शिक्षा विभाग)
पश्चिमी खंड-7, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली - 110066.
फोन नं. 011-26105211 • वेबसाइट : www.cstt.mhrd.gov.in

Commission for Scientific and Technical Terminology
Ministry of Human Resource Development
(Department of Higher Education)
West Block-7, R.K. Puram, New Delhi - 110066.
Phone: 011-26105211 • Website: www.cstt.mhrd.gov.in

मुद्रण निदेशालय द्वारा, भारत सरकार मुद्रणालय, रिंग रोड, मायापुरी, नई दिल्ली-110064
द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशन नियंत्रक, सिविल लाइन्स, दिल्ली-110054 द्वारा प्रकाशित । 2018